अथ

श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितः

आत्मबोधः ।

माधवानन्दप्रणीतहिंदुस्थानीभाषाटीकासमेतः ।

द्वितीयावृत्तिः ।

स च

मुम्बापुर्यां

"निर्णयसागर" यन्त्रालयाधिपतिना स्वकीये मुद्रणयन्त्रे
मुद्रयित्वा प्राकाश्यं नीतः ।

शकाब्दाः १८१२ संवत् १९४६.

आत्मबोधकी प्रस्तावना.



यह आत्मबोधनामक वेदांतप्रकरण श्रीमद्भगवच्छंकराचार्यनें मुमुक्षु पुरुषोंके उपकारार्थ अनेक प्रकारकी श्रुतिस्मृतियोंका सार लेकर आत्मस्वरूपका विचार अति सुगमतातें रचा. तिसके ऊपर अनेक विद्वानोंनें संस्कृत टीका भी बनाई, परंतु जो भाषावाले जिज्ञासु पुरुष हैं, तिनके समझनेंमें संस्कृत टीका आती नहीं. काहेतें, की वेदांत प्रकरण अति बारीक है, और वे बिचारे श्रद्धाकरिके बहुत परिश्रम भी करते हैं, परंतु साक्षी आत्माका अति कठिनतातें बोध होता है; तौ भी तिनके मनमें चिंता बनी रहती है. इस कारणतें शुद्ध अधिकारी और आत्मस्वरूपके जाननेकी अति उत्कृष्ट है इच्छा जिनकों और संसारकूपकों कारागारवत् तुच्छ मानने, तिसके भोगनके त्यागनकों यत्नपूर्वक उपायभी बहुत करते रहते हैं; परंतु प्रारब्धकी प्रबलतातें यत्न निष्फल हो जाते हैं, ऐसे

श्रीमद्वैश्यवंशभूषण भीषमचंद सेठ वासस्थान बोदर अति श्रद्धाभक्तिपूर्वक हमारेप्रति निवेदन करा, की आप हमारे अर्थ आत्मबोधप्रकरणकी भाषाटीका कृपा करिके जगतके उपकारार्थ बना देवै तौ बहुत अच्छा है, तब हमनें अति सरल और तात्पर्यरूप अर्थ प्रकाश करा है, जिसमें हरएकके समझनेमें भली प्रकारतें आवै तौ जो कोई पुरुष इस टीकाकों विचार करैंगे सो निःसंदेह परमपदकों प्राप्त होवैंगे. फेरि संसारके जन्ममरण इत्यादिक जो क्लेश हैं सो भली प्रकारतें निवृत्त होवैंगे. काहेतें, आत्मस्वरूपके यथार्थज्ञानविना संसार समाप्त होता नहीं, यह सर्व विद्वानोंका अनुभव है. तातें उत्तम पुरुषोंकों यही योग्य है, की आत्मस्वरूपके जाननेकी इच्छानिमित्त प्रबल करै, और श्रद्धाभक्तिपूर्वक इस आत्मबोध प्रकरणकों भाषाटीकासमेत नित्य विचार करै, और लेखक लोग इस हिंदुस्थानी वानीकों बदलै नहीं यह हमारी उनतें प्रार्थना है इति ॥

अथ

॥ आत्मबोधः प्रारभ्यते ॥



श्रीगणेशाय नमः ॥ अथात्मबोधप्रकरणकी भाषाटीका लिख्यते ॥ मनहरन छन्द ॥ उदधि अपार मम रूपतें, तरंगतुल्य विधि हरि हर, आदि जे ते रूपधारी हैं। देव दैत्य पन्नग पिशाच चराचर, जे ते जहँलग जगजालमायानें पसारी है॥ सबकों आधार आप निराधार, आतमसों सत चित आनंदस्वरूपतें सो न्यारी है। साक्षी एक समरस व्यापक, आकाशवत् पूरनप्रकाश, ताकों वंदना हमारी है॥ १ ॥ जामें उदै अस्त नाहीं, व्यस्तहुं समस्त नाहीं, वानीका प्रवेश नाहीं, नाहीं कछु जो कहौ। जीव ईश भेद नाहीं, कोई प्रतिषेध नाहीं, कोशकृत क्लेश नाहीं, कौन विधिमें गहौ॥ वेदहुँ पुराण नाहीं, लक्ष्य औ अलक्ष्य नाहीं, आतम कू-

टस्थ एकरूप सदा रमि रहौं । द्वैतहूंको लेश नाहीं, अहं त्वहं भेद नाहीं, गुरु उपदेश नाहीं, तातें चुप व्हे रहौं ॥ २ ॥ ऐसो चिदानंदब्रह्म, मायाकों संयोग पाई, भूलिके स्वरूपकों सो जीव नाम धारै है। क्षीरनीरभेदवत् एकरूप भासत है, दुस्तर सो भेद जहां, सूरि पचिहारे हैं ॥ जाको श्रीशंकरानंदगुरु भिन्नभिन्न करि जगउपकार, लगि वहु ग्रंथ सारे हैं। श्रुतीको प्रमाण जहां, भासै करामलक सो आत्म विचार आत्मबोध नाम चारे हैं ॥ कठिनविचार जाकों संस्कृत वानीमांहि भाषामें प्रकाश कीन सरल सुधारे हैं ॥ ३ ॥ दोहा ॥ वैश्यवंश अवतंस अतिपावन परमप्रकाश॥विमल विवेक विचार दृढ चिदानन्द रसवास ॥४॥ गुरुसेवारत चित्त नित धर्म निपुन गुनधाम ॥ सदा तीव्र वैराग जिहिं भीषमचन्द सो नाम ॥ ५ ॥ ताके हितके हेत यह भाषा भाष्य नवीन॥करी यथामति प्रीतिजुत चिदानंद रसलीन ॥६॥ जो याकों नित प्रीतियुत पढै सुनै

नर कोई ॥ भववारिधिके दुःखसों तुरतहि पार सो होई ॥ ७ ॥

अथ वार्तिक ॥ परमदयावान् भगवान् जो हैं श्रीशंकराचार्य, सो उत्तम अधिकारियोंके अर्थ वेदपयोनिधि मथिकर ज्ञानरूपी रत्न निकासिके उपनिषत्, सूत्र औ गीता ये तीनि प्रस्थान जो हैं ध्येयब्रह्मके निरनै, अर्थात् जीवब्रह्मकी एकता, ताके सिद्धि करनेवाले तिनके विचार करनेकों जो समर्थ नहीं, ऐसे मंदबुद्धि मुमुक्षु पुरुषनके ऊपर अनुग्रहके अर्थ सर्व वेदांतसारसंग्रह यह परम रत्नरूप आत्मबोधप्रकरणनाम ग्रंथ करते भये हैं.

ॐ तपोभिः क्षीणपापानां शांतानां वीतरागिणाम् ॥ मुमुक्षूणामपेक्षोऽयमात्मबोधो विधीयते ॥ १ ॥

तपोभिरिति ॥ तप कहे कृच्छ्रचांद्रायण, नि-

त्य, नैमित्तिक, उपासना आदि अनुष्ठानरूप तपकरिके क्षीण भये हैं पाप जिनके, अथवा चक्षु आदि इंद्रियनिग्रहरूप तपकरिके क्षीण भये हैं पाप जिनके; तात्पर्य यह– रागद्वेषादि अंतःकरणके दोष दूर भये हैं जिन पुरुषनके, और 'शांतानां' कहे छोभरहित; वीतराग कहे इस लोक और परलोकके भोगनविषे इच्छारहित; मुमुक्षु कहिये जन्म, जरा, मरण, संसाररूपी ग्रंथि छेदन करनेकी अभिलाषावाले ऐसे जो हैं मुमुक्षु, तिन पुरुषनके हितके अर्थ यह आत्मबोधप्रकरण अभिधीयते कहे कहते हैं ॥ १ ॥

शंका–तपस्या और मंत्रनका जप और यज्ञादिक कर्म और जोग आदि अनेक प्रकारके साधन करिके मोक्षका बोधन, अर्थात् सिद्धि कहा है. तुम मोक्षका साधन आत्माका ज्ञान कैसे कहते हो?

उत्तर–आत्मा अर्थात् अपने स्वरूपका जो

बोध है, सोई साक्षात् मोक्षका कारण है; ऐसे श्रुतिप्रमाण सिद्ध है; और कर्म, उपासना शुद्धिका कारण है, मोक्षका नहीं. इसतें हम आत्मबोधकों मोक्षका साधन कहते हैं. तिसका दृष्टांतः–

बोधोऽन्यसाधनेभ्यो हि साक्षान्मोक्षैकसाधनम् ॥ पाकस्य वह्निवज्ज्ञानं विना मोक्षो न सिद्ध्यति ॥ २ ॥

बोध इति ॥ तप, मंत्र और कर्मयोगादिक जो नानाप्रकारके कर्म हैं, सो चित्तकी शुद्धि और एकाग्रताके अर्थ हैं; और परंपरा करिके आत्मज्ञानके विना मोक्षकी सिद्धि होती नहीं. तातें, मोक्षका साधन आत्माका बोध है, कर्म नहीं. दृष्टांत–पाकस्येति ॥ जैसे लोकविषे काष्ठ, जल, अन्नादिक भोजनसिद्धिके अर्थ संपूर्ण सामग्री यथार्थ इकठी है परंतु अग्निविना भोजनकी सिद्धि होती नहीं, तैसे अनेकप्रकारके जो हैं कर्म

और उपासना सो कोटिन जन्म करता रहै, परंतु ज्ञानविना मोक्ष होती नहीं ॥ तथा च श्रुतिः॥ "ज्ञानादेव तु कैवल्यं । ऋते ज्ञानान्नमुक्तिः ज्ञात्वादेवं सर्वपाशापहानिः" इति श्रुतेः ॥ इसका अर्थ ज्ञानहीतें मुक्ति होती है, और ज्ञानतें रहितकों मुक्ति नहीं; और आत्मादेवकों जाननेसें सर्व पाशनकी हानि होती है. तात्पर्य यह, संपूर्ण बंधनोंतें छूटिके पुरुष परमपदकों प्राप्त होता है. ऐसे श्रुति भी ज्ञानविना मोक्षकों उपासनाकर्मतें निषेध करती है.

शंका—कर्मनकी भी विचित्र शक्ति है, और जनकादिक कर्महीद्वारा संसिद्धिकों प्राप्त भये हैं; तातें, कर्मनतेंही अज्ञानका नाश होकर मुक्ति होती है; तुम ज्ञानतें अज्ञानका नाश कैसे कहते हो?

उत्तर—जो जिसका विरोधी नहीं होता, सो तिसके नाश करनेकों भी समर्थ नहीं होता, और संसिद्धिशब्दका अर्थ अंतःकरणकी शुद्धिपरता है, मोक्षका कारण नहीं.

अविरोधितया कर्म नाविद्या वि-
निवर्तयेत् ॥ विद्याऽविद्यां निह-
न्त्येव तेजस्तिमिरसंघवत् ॥ ३ ॥

अविरोधितयेति ॥ कर्म और अज्ञानका अविरोध है, अर्थ यह–कर्म और अज्ञानका परस्पर विरोध नहीं; काहेतें की, दोऊ जड हैं; इस कारणतें कर्म अविद्या कहे, अज्ञानकी निवृत्ति करनेकों समर्थ नहीं; तातें मैं नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तिस्वरूप ब्रह्म हूं; इस प्रकारकी विद्या कहे ब्रह्म और आत्माकी एकताका ज्ञान; सो मैं मनुष्य हूं, दुःखी हूं, सुखी हूं, मूर्ख हूं ऐसा जो है अविद्या कहे अज्ञान तिसका नाश करनेकों समर्थ है. तेज इति॥जैसे तेज जो है सूर्यादिकनका प्रकाश सो तिमिर कहे अंधकारकों शीघ्रही नाश करता है, तैसे आत्मज्ञानके प्रकाश होतही संपूर्ण अज्ञानका नाश होजाता है ३

शंका–प्रतिशरीरमें आत्मा परिच्छिन्न कहे

नाशमान् अर्थात् जन्मतेमें मरा हुवा प्रतीत होता है, तौ जीवब्रह्मकी एकताके ज्ञानतें अज्ञानकी निवृत्ति कैसी बनती है?

उत्तर—अज्ञानकरिके आत्मा परिच्छिन्नवत् प्रतीत होता है, तिस अज्ञानके नाश होनेतें अपरिच्छिन्नवत् आपही प्रकाशमान् होता है यह कहते हैं.

परिच्छिन्न इवाज्ञानात्तन्नाशे सति केवलः ॥ स्वयं प्रकाशते ह्यात्मा मेघापायेंऽशुमानिव ॥ ४ ॥

परिच्छिन्न इति ॥ सर्वत्र परिपूर्ण अद्वितीय आत्मा अज्ञानकल्पित देवमनुष्यादि उंचनीच शरीरके अध्यास, अर्थात् भ्रमकरिके परिच्छिन्नवत् प्रतीत होता; सो जब तत्त्वमसि इत्यादि श्रुतिके महावाक्यनद्वारा जब आत्मा और ब्रह्मकी एकताका ज्ञान होता है, तब अज्ञानतें जो मिथ्या अध्यासका आरोप है तिसका नाश होनेतें आ-

त्माके बल कहे सजातीय विजातीय स्वगतभेदतें रहित स्वप्रकाश प्रतीत होता है. ताका दृष्टांत—मेघापायेति ॥ मेघकृत जो है आवरण, तिसके नाश होनेतें जैसे सूर्य आपही प्रकाशमान् होता है तैसे अज्ञानके नाश होनेतें आत्मा आपही प्रकाशमान् होता है ॥ ४ ॥

शंका—अज्ञानके नाशतें आत्माकी केवलताका जो तुम प्रतिपादन करते हो सो नहीं संभवता. काहेतें की, अज्ञानके नाश करनेवाली वृत्ति ज्ञानकरिके द्वैतकी प्राप्ति होती है.

उत्तर—अज्ञानकरिके जीव मलिन है वास्तव आत्मा शुद्ध है यह कहते हैं.

अज्ञानकलुषं जीवं ज्ञानाभ्यासाद्धि निर्मलम् ॥ कृत्वा ज्ञानं स्वयं नश्येज्जलं कतकरेणुवत् ॥ ५ ॥

अज्ञानेति ॥ अकर्त्ता, अभोक्ता जो है सच्चिदानंदस्वरूप आत्मा ब्रह्म, सो अज्ञानकरिके मैं कर्त्ता हुं, मैं भोक्ता हुं, मैं जीव हुं ऐसे भ्रमकरिके अपनेकों मानता है; तातें, कुलुष कहे मलिन हो गया है; सो मैं अकर्त्ता, अभोक्ता, सच्चिदानन्द, कूटस्थ, असंग साक्षी ब्रह्म हुं; ऐसे ज्ञानकरिके अपने स्वरूपका जब बहुतकाल अभ्यास करता है तब आपही निर्मल कहे अज्ञानरूपी मायामलतें रहित अपने स्वरूपविषे स्थित होता है. जैसे कतकरेणु जो है निर्मली बूटि सो जलकों निर्मल करि देती है; तैसे ज्ञान आत्माकों आपही निर्मल करि देता है ॥ ५ ॥

शंका—अपरोक्ष साक्षात् जो प्रतीत होता है संसार, सो भी सत्य है; तुम आत्माकी केवलता कहे अद्वैतता कैसे कहते हो?

उत्तर—मिथ्या जगतकरिके आत्माकी अद्वै-

तताकी हानि नहीं होती, सो स्वप्नके दृष्टांतसें संसारके मिथ्यापनेकों सिद्ध करते हैं.

संसारः स्वप्नतुल्यो हि रागद्वेषादिसंकुलः ॥ स्वकाले सत्यवद्भाति प्रबोधेऽसत्यवद्भवेत् ॥ ६ ॥

संसार इति ॥ रागद्वेषादि करिके प्राप्त यह संसार स्वप्नके तुल्य मिथ्या है, जैसे स्वप्नके पदार्थ निद्रासमयमें सत्यवत् प्रतीत होते हैं, और प्रबोध कहे जाग्रत् अवस्थाविषे आपही असत्य हो जाते हैं, तैसे यह संसार अज्ञानकालमें सत्यवत् प्रतीत होता है; और प्रबोध कहे आत्मा और ब्रह्मकी एकताके ज्ञानकरिके संसार आपही मिथ्या हो जाता है. तातें संसारकरिके आत्माकी अद्वैतताकी हानि नहीं होती ॥ ६ ॥

जगतकों अधिष्ठान कूटस्थ साक्षी आत्माका जबतक ज्ञान अर्थात् जानते नहीं, तबतक कल्पित जगत् सत्यवत् प्रतीत होता है.

तावत्सत्यं जगद्भाति शुक्तिकारजतं यथा ॥ यावन्न ज्ञायते ब्रह्म सर्वाधिष्ठानमद्वयम् ॥ ७ ॥

तावदिति ॥ जबतक नीलपृष्ठ त्रिकोणादियुक्त सीपाका रूप यथार्थ नहीं जाना जाता, तबतक कल्पित रजत कहे चांदी सत्यवत् प्रतीत होती है; तैसे सच्चिदानंद अद्वैतब्रह्मका स्वरूप जबतक यथार्थ नहीं जानते. तात्पर्य यह, जबतक साक्षात्कार नहीं अनुभव होता, तबतक मिथ्याभूत प्रपंच भ्रम करिके सत्यवत् प्रतीत होता है ॥७॥

तातें संपूर्ण प्रपंच ब्रह्मविषे कल्पित है, तिसकों दृष्टांतकरिके दृढ करते हैं.

सच्चिदात्मन्यनुस्यूते नित्ये विष्णौ प्रकल्पिताः ॥ व्यक्तयो विविधाः सर्वा हाटके कटकादिवत् ॥ ८ ॥

सच्चिदिति ॥ अस्तिभातिप्रियरूप आत्मा-

विषे और नामरूपात्मक जगतविषे, अनुस्यूत कहे जैसे मणिकोंविषे सूत्र, और सूत्रविषे मणिके ऐसे परस्पर ओतप्रोत कहे व्यापक हैं और नित्य कहे तीनि कालविषे बाधरहित विष्णु कहे चराचरमें व्यापक और सर्वका उपादानभूत ब्रह्म तिसविषे, 'व्यक्तयः' कहे नानाप्रकारकी देव, मनुष्य, पशु, कीट, पतंग आदिकी मूर्त्ति नामरूप जगत मिथ्या मायानें कल्पे हैं; जैसे हाटक कहे सुवर्ण तिसविषे कटक कुण्डलादिक मिथ्या नामरूप कल्पे हैं. तातें, वाचारंभणमात्रही ब्रह्मविषे जगतकी मिथ्या कल्पना है, वास्तव जगत अर्थात् नामरूप विकाररहित आत्मा शुद्ध है॥ ८॥

शंका–प्रपंचका मिथ्यापना भी है, और जीवभेद सत्य है, तौ प्रपंचके अधिष्ठानरूप परमात्माकों तुम अद्वितीय कैसे कहते हो?

उत्तर–उपाधिकरिके आत्माविषे भेद प्रतीत

होता है, वास्तव आत्मा अद्वितीय है और भेद कल्पित है.

यथाकाशो हृषीकेशो नानोपाधिगतो विभुः ॥ तद्भेदाद्भिन्नवद्भाति तन्नाशे सति केवलः ॥ ९ ॥

यथाकाश इति ॥ जैसे व्यापक आकाश घटमठआदि नामरूप उपाधिनमें प्राप्त होकर तिन उपाधियोंके भेदकरिके घटाकाश मठाकाशवत् आकाशकी प्रतीति होती है, तैसे व्यापक ब्रह्म हृषीकेश कहे सर्व इंद्रिय अंतःकरणादिरूप उपाधिनमें ढका हुवा. तात्पर्य यह, अंतःकरणविषे प्रतिबिंबभावकों प्राप्त तिसकरिके आत्माविषे भेद, अर्थात् भिन्नवत् प्रतीत होता है, तिन उपाधिनके नाश होनेतें आत्मा एक अद्वैत प्रतीत होता है. तात्पर्य यह, असंग अद्वितीय आत्माविषे वास्तव

भेद कोई है नहीं. उपाधिकरिके जीव ईश्वर भेद भिन्नवत् प्रतीत होता है; जैसे घट मठ उपाधिनके नाश होनेतें आकाश एकवत् प्रतीत होता है॥९॥

शंका–मैं ब्राह्मण हूं, मैं ब्रह्मचारी हूं, मैं संन्यासी हूं, इस प्रकार जाति, वर्ण, आश्रम आदि नानाप्रकारके धर्मयुक्त आत्मा प्रतीत होता है, तौ असंग कैसे कहते हो ?

उत्तर–जाति, वर्ण, आश्रम आदि धर्म असंग आत्माविषे कल्पित हैं, वास्तव हैं नहीं.

नानोपाधिवशादेव जातिनामाश्रमादयः ॥ आत्मन्यारोपितास्तोये रसवर्णादिभेदवत् ॥ १० ॥

नानोपाधीति ॥ प्रथम कही हुई उपाधियोंकी तरह देह आदि अनेक उपाधिनकरिके आत्मा और देहकी एकरूपताके अध्यास, अर्थात् भ्रमकरिके तिस देहके जो हैं धर्म, जाति, आश्रम

आदिक मिथ्या, सो आत्माविषे आरोप किया है, सो अविद्या अर्थात् अज्ञानकल्पित है, वास्तव कछु भी सत्य नहीं. जैसे स्वभावकरके जल मधुर और शुभ्र है; परंतु जैसे जैसे कटु कषाय लवणादिक रक्त, पीत, श्याम रंग मिलाया, तैसे तैसे जल प्रतीत होता है. तैसे जाति, वर्ण, आश्रमके साथ मिलिकर आत्मा जाति वर्ण आश्रम प्रतीत होता है, स्वाभाविक कछु भी आत्माविषे है नहीं ॥१०॥

अब अविद्याकल्पित जो तीनि उपाधि हैं तिनका स्वरूप कहते हैं.

पंचीकृतमहाभूतसंभवं कर्मसंचितम् ॥ शरीरं सुखदुःखानां भोगायतनमुच्यते ॥ ११ ॥

पंचीकृतेति ॥ पंचीकृत पंचमहाभूत जो हैं पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, नामरूप जगतके परिणामी अर्थात् उपादानकारण तिनतें

है संभव कहे उत्पत्ति जिसकी सो प्रारब्धकर्मरचित आत्माके सुखदुःख भोगनेका आयतन कहे स्थान है. तिसका नाम स्थूल शरीर है. सो आत्माकी प्रथम उपाधि मुख्य है ॥ ११ ॥

अब सूक्ष्मशरीरकी उपाधि कहते हैं.

पंचप्राणमनोबुद्धिदशेंद्रियसमन्वितम् ॥ अपंचीकृतभूतोत्थं सूक्ष्मांगं भोगसाधनम् ॥ १२ ॥

पंचेति ॥ पंचप्राण कहे प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान; और मन कहे संकल्पविकल्परूप अंतःकरणकी वृत्ति; और बुद्धि कहे निश्चयरूप वृत्ति; और दशइंद्रिय श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, नासिका, और जिव्हा ये पंच ज्ञानइंद्रिय; और बानी, हाथ, पाद, गुदा, लिंग, ये पंच कर्मइंद्रिय ऐसे ऐसे सब मिलिकर सत्तरह वस्तुसंयुक्त अपंचीकृत पंचमहा सूक्ष्मभूत उपादानकारणतें उत्थं कहे उत्पत्ति सो

आत्माके सुखदुःख भोगनेका साधन जो सूक्ष्मांग कहे लिंगशरीर यह आत्माकी दूसरी उपाधि है १२
अब तीसरी कारणशरीरकी उपाधि कहते हैं.

अनाद्यविद्यानिर्वाच्या कारणोपाधिरुच्यते॥ उपाधित्रितयादन्यमात्मानमवधारयेत् ॥ १३ ॥

अनादीति ॥ अनिर्वचनीय तत्त्वज्ञानतें रहित जगतकी उत्पत्ति करनेकों समर्थ जो सत्य असत्य कही जाइ नहीं. काहेतें, जो मायाकों सत्य कहौ तौ ज्ञानकरिके नष्ट हो जाती है, और असत्य कहौ तौ असत्यतें जगतकी उत्पत्ति संभवै नहीं. तातें माया अनिर्वचनीय है, सो अनादि कहे उत्पत्तिरहित समष्टि व्यष्टि स्थूल सूक्ष्म शरीरकी उत्पत्ति करनेकों कारण कहे बीज है, सो यह आत्माकी तीसरी उपाधि है. अब तीनि उपाधि निरूपण करनेका प्रयोजन कहते हैं. 'उ-

पाधीति' कहे जो स्थूल सूक्ष्म कारण तीनि उपाधि हैं तिनतें आत्माकों अन्य कहे इनतें जुदा इनका साक्षी अर्थात् देखनेवालेनें अपने स्वरूपकों निश्चय करना की मैं असंग कूटस्थ साक्षी सच्चिदानंद ब्रह्म इनका देखनेवाला इनतें भिन्न हूं; जैसे घटका देखनेवाला घटतें भिन्न होता है तैसे मैं इनतें भिन्न हूं इति ॥ १३ ॥

शंका–उपाधि तीनितें भिन्न आत्माकी सच्चिदानंदरूपता जो तुम कहते हौ सो नहीं संभवती. काहेतें की, आत्मा अन्नमयादि कोशरूप प्रतीत होता है. और श्रुतिभी कहती है सो एक पुरुष अन्नरसमय है इस कारणतें यह प्रतीत होता है की, कोशनतें भिन्न आत्मा है नहीं, कोशही आत्मा है.

उत्तर–आत्माकी अन्नमयादि कोशरूप जो प्रतीत है सो देहकी और आत्माकी एकरू-

पताके भ्रमकरिके प्रतीत होती है; वास्तव आत्मा पंचकोशनतें भिन्न है, सो दृष्टांतकरिके कहते हैं.

पंचकोशादियोगेन तत्तन्मय इव स्थितः ॥ शुद्धात्मा नीलवस्त्रादियोगेन स्फटिको यथा ॥ १४ ॥

पंचकोशेति ॥ अन्नरसतें जो होता है और अन्नहीतें बढता है, और अन्नरूप पृथिवीमें लय हो जाता है, सो अन्नमय कोश है; और पंच कर्मइंद्रिय और पंच प्राण मिलिके प्राणमय कोश होता है; पंच ज्ञानइंद्रिय और मन मिलिके मनोमय कोश होता है और पंच ज्ञानइंद्रिय और बुद्धि मिलिके विज्ञानमय कोश होता है; और कारणशरीरभूत अविद्या मलिनसत्वप्रधान प्रियादिवृत्तिसहित आनंदमय कोश होता है, सो ये अन्नमयादि जो पंचकोश हैं, तिनकरिके आत्मा-

की सच्चिदानन्दतादि रूपता आच्छादित अर्थात् ढकी हुई है. श्लोकविषे आदिपद है तिसतें स्थूलता, कृशता, क्षुधा, तृषा आदिक धर्मोंकों लेना तिनके जोग करिके मिथ्या तद्रूपता अर्थात् कोश और आत्माकी एकरूपताके भ्रमकरिके आत्मा कोशरूप प्रतीत होता है. वास्तव आत्मा शुद्ध है; पर जिस जिस कोशके साथ आत्माका व्यवहार होता है सो सो कोशरूप आत्मा प्रतीत होता है. जैसे मैं मनुष्य हूं, मैं मोटा हूं, मैं पतला हूं, ऐसे अन्नमय कोशरूप प्रतीत होता है; और मैं भूखा हूं, मैं प्यासा हूं, ऐसे प्राणमय कोशरूप प्रतीत होता है; देह मेरी है, घर पुत्रादि मेरे हैं, मैं संसारी हूं, ऐसे मनोमय कोशरूप प्रतीत होता है; मैं ज्ञानवान हूं, मैं मूर्ख हूं, ऐसे विज्ञानमय कोशरूप प्रतीत होता है; अब मैं सुखी हूं ऐसे आनंदमय कोशरूप प्रतीत होता है. इस प्रकार अन्नमयादि कोशनके मिथ्या धर्म आत्माविषे भ्रमकरिके प्र-

तीत होते हैं, स्वाभाविक आत्माविषे कोई धर्म है नहीं; और श्रुतिनें जो आत्माकी अन्नमयादिरूपता कही है सो अरुंधतीके न्यायकरिके सूक्ष्मवस्तुके दिखानेविषे तात्पर्य है; काहेतें की, पंचकोशनकी उपाधीतें आत्माकों जीवरूपता है, और श्रुतिका यह तात्पर्य नहीं है की, आत्मा अन्नमयादिक पंच कोश है, और आत्मा एक है, कोश अनेक हैं, कोश उत्पत्तिविनाशवाले हैं, आत्मा अविनाशी है, कोश धर्मवाले हैं, आत्मा संपूर्ण धर्मनतें रहित है, तौ आत्मा कोश कैसे हो सकता है? सो दृष्टांततें कहते हैं. जैसे स्वभावकरिके स्फटिक शुद्ध है परंतु नीलपीतादि वस्त्रके योगकरिके नीला, पीला प्रतीत होता है, स्वाभाविक स्फटिक नील पीत है नहीं ॥ १४ ॥

कोश और आत्माकी एकरूपताका जो अभ्यास तिस अभ्यास करिके आत्मा कोशरूप प्रतीत होता है, तिन कोशनतें आत्माका विवेचन

कोपृादिभ्य आ आविवेचनमाह वपुस्तुषादिनि रीति

अर्थात् भिन्न करै तौ आत्माविषे कोई भेद है नहीं. तिसकों दृष्टांतकरिके कहते हैं.

वपुस्तुषादिभिः कोशैर्युक्तं युक्त्या-
वघाततः ॥ आत्मानमंतरं शु-
द्धं विविच्यात्तंडुलं यथा ॥ १५ ॥ कार्यथा

वपुस्तुषादिभिरिति ॥ जैसे चाउरका स्वरूप भीतर शुद्ध अरु शुक्लरूप है सो भूसीकरिके ढंका हुवा भूसीरूप प्रतीत होता है, तिसकों जुक्तीतें कूटिके भूसीतें जुदा करि लेते हैं, तैसे अन्नमयादि कोशनकों जुक्तिरूप विचारतें तिन कोशनके भीतर जो शुद्ध आत्मा है तिसकों जुदा करि लेते हैं, सो विचारका स्वरूप कहते हैं. अन्नमय कोश आत्मा नहीं है, काहेतें पंचभूतनका कार्य है. घटादिवत् और जो अन्नमय कोशकों आत्मा मानौ तौ वर्तमान शरीरविषे जो सुखदुःख भोगते हैं सो विना कर्म करेहीं फल भोगने परे,

अरु इस शरीरकरिके जो पुण्यपापरूप कर्म तिनका फल विना भोगनेतेंही नाश भये अरु शरीर अवश्य नाश होता है; तातें अकृतनाशकृताभ्यागम दोष होता है, तिसका परिहार किसीतेंभी होता नहीं, और जन्मतें पहिले यह शरीर था नहीं, और मरणतें पीछे भी रहैगा नहीं, तातें किसी प्रमाणकरिके आत्मा अन्नमयकोश सिद्ध होता नहीं और प्राणमय कोश भी आत्मा नहीं. काहेतें की, प्राणमयकोश भी अपंचीकृत पंचमहाभूतनका कार्य है, और जड है, स्थूलकी तरह और मनोमयकोश भी आत्मा नहीं. काहेतें की, मन भी संकल्पविकल्पवाला है, आत्माविषे संकल्पविकल्प है नहीं; और मन सतोगुणका कार्य है, आत्मा तो सतोगुणका कार्य नहीं. और विज्ञानमय कोशभी आत्मा नहीं; काहेतें, विज्ञानमय कोशभी सतोगुणका कार्य है, और परिणामी है, आत्मा परिणामी है नहीं, और आनंदमयकोशभी आत्मा नहीं. काहेतें अवि-

द्यारूप वृत्तिवाला और जड है, घटादिकी तरह- और आनंदमयकोश मलिनसत्व प्रियादि वृत्ति-वाला है, आत्मा अविद्याकी वृत्तिवाला नहीं और जड नहीं, ऐसे जो पंचकोश हैं तिनतें जुदा प्रत्यगात्मा जो है परमात्मा सच्चिदानंदस्वरूप साक्षीको निश्चय करना ॥ १५ ॥

शंका—आत्माकों ब्रह्मरूपता होनेतें व्यापकता करिके सर्वत्र प्रतीत होना चाहिये, और तुम भी कहते हो की, आत्मा सर्वत्र व्यापक है, परंतु सर्वत्र प्रतीत कहे नहीं होता ॥

सदा सर्वगतोऽप्यात्मा न सर्वत्रावभासते ॥ बुद्धावेवावभासेत स्वच्छेषु प्रतिबिंबवत् ॥ १६ ॥

उत्तर—सदेति ॥ आत्मा सर्वगत भी है अरु सर्वत्र व्यापकरूप स्थित भी है; परंतु सर्वत्र प्रतीत नहीं होता और अस्ति भाति प्रिय-

रूपकरिके सदा सर्वत्र घटादि पदार्थनविषे प्रतीत भी होता है. तात्पर्य यह, अनुभवरूपता कहे सर्वका अनुभव अर्थात् जाननेवाला विशेषिरूपकरिके बुद्धिविषे भली प्रकार प्रतीत होता है; काहेतें, बुद्धि सतोगुणका कार्य होनेतें शुद्ध है; जैसे घट, भीति, कांच आदिक सर्व मृत्तिकाके कार्य हैं; परंतु कांच शुद्ध है, इस कारणतें दर्पणविषे प्रतिबिंब प्रतीत होता है; जैसे सूर्य अपनी किरणद्वारा सर्वत्र व्यापक है; परंतु घटादिविषे प्रतीत नहीं होता और जलादिकेविषे प्रतीत होता है, तैसे देहादि पदार्थ रजतमका कार्य हैं, तिनविषे आत्मा प्रतीत नहीं होता इति ॥१६॥

अब देहइंद्रिय आदि संघातविषे आत्मा वर्तमान भी है, परंतु तिनतें जुदा है तिसकों राजाके दृष्टांत करिके दृढ करते हैं ॥

देहेंद्रियमनोबुद्धिप्रकृतिभ्यो विलक्षणम् ॥ तद्वृत्तिसाक्षिणं विंद्यादात्मानं राजवत्सदा ॥ १७ ॥

देहेति ॥ देहइंद्रियादि संघातविषे वर्तमान आत्माकों देह, इंद्रि, मन, बुद्धि जो हैं प्रकृति कहे मायाके कार्य जड परिणामी और दृश्य तिनतें जुदा चैतन्यस्वरूप परिणामरहित अदृश्यस्वरूप तिन देहादिकी जैसे बालकादिअवस्था वृत्ति और रूपरसादि विषय आकारकों नेत्रादि वृत्ति करि जानना और संकल्पविकल्पात्मक मनकी वृत्ति, और निश्चयात्मक बुद्धिकी वृत्ति, और आकाशादि आकारपरिणामरूप मायावृत्ति, तिन सर्व वृत्तियोंका साक्षी आत्माकों भिन्न जानना; जैसे अपनी सभाविषे राजा संपूर्ण सभावाले पुरुषनका साक्षी प्रेरक आप तिनतें जुदा अर्थात् तेजःपुंज प्रताप आदिक गुणयुक्त सभावालोंतें भिन्नही है ॥१७॥

शंका—आत्माकी साक्षीरूपताका जो ज्ञान तुम कहते हौ सो बनै नहीं. काहेतें की, संघातविषे आत्मा व्यवहारवाला प्रतीत होता है और साक्षी साक्ष्यतें भिन्न होता है.

उत्तर—अज्ञानियोंकों भ्रमकरिके आत्मा व्यापारी प्रतीत होता है, वास्तव आत्माविषे कोई व्यापार नहीं. तिसकों दृष्टांतकरिके कहते हैं

व्यापृतेष्विंद्रियेष्वात्मा व्यापारीवाविवेकिनाम् ॥ दृश्यतेऽभ्रेषु धावत्सु धावन्निव यथा शशी ॥ १८ ॥

व्यापृतेष्विति ॥ नेत्रआदि इंद्रियोंविषे अपनां अपना जो इंद्रियोंका व्यवहार है सो आत्माका है, अर्थात् आत्माही व्यवहार करनेवाला है, ऐसे अविवेकी पुरुष जो गुरुशास्त्रादि उपदेशरहित मूर्ख हैं सो आत्माकों मानते हैं, और तत्त्ववेत्ता नहीं मानते. जैसे आकाशविषे वायुके वेगतें

वद्दर दौरते हैं, तिनविषे मूर्ख चंद्रमाकों दौरता मानते हैं की चंद्रमा दौरता है ॥ १८ ॥

शंका—देह इंद्रिय आदिक जड पदार्थनकों तुम व्यापारी कहते हौ तौ देहइंद्रियादिकोंकों चैतन्य-भी मानना चाहिये और चैतन्यता अंगीकार क-रौगे तौ देह इंद्रियादिकोंकों आत्मता कैसे न होवैगी? तात्पर्य यह आत्मता अवश्य माननी योग्य है ॥

उत्तर—चैतन्यआत्माके आश्रय देहइंद्रिय अपने अपने व्यवहारविषे वर्तती हैं, वास्तव देहइं-द्रिय चैतन्य नहीं.

आत्मचैतन्यमाश्रित्य देहेन्द्रियमनोधियः ॥ स्वकीयार्थेषु वर्तन्ते सूर्यालोके यथा जनाः ॥१९॥

आत्मचैतन्यमिति ॥ चैतन्यस्वरूप जो आत्मा है, तिसके आश्रय देहइंद्रियादिक अपने

अपने अर्थविषे वर्तती अर्थात् व्यवहार करती हैं. जैसे लोकविषे संपूर्ण भोग सूर्यके प्रकाशके आश्रय अपने अपने व्यवहारोंविषे वर्त्तते हैं. तातें देहइंद्रिय आदिक स्वतै चैतन्य नहीं इस कारणतें तिनकों आत्मता नहीं संभवती इति ॥१९॥

शंका–आत्मा चैतन्यरूप तौ है, परंतु मैं जन्मता हूं, मैं मरता हूं, मैं बालक हूं, मैं जवान हूं, मैं वृद्ध हूं, मैं काणा हूं, मैं बधिर हूं, मैं देखता हूं, मैं सुनता हूं, ऐसे व्यवहार आत्माविषे प्रतीत होते हैं, तातें आत्मा जन्ममृत्युवाला संभवता है ॥

उत्तर–जन्ममृत्युतें आदि लेकर देहइंद्रियादिकके धर्म अविवेककरिके आत्माविषे आरोप करते हैं, अपने अज्ञानतें वास्तव देह इंद्रियादिक धर्मनतें आत्मा रहित है. तिसकों दृष्टांत करिके दृढ करते हैं ॥

देहेंद्रियगुणान्कर्माण्यमले सच्चि-दात्मनि ॥ अध्यस्यंत्यविवेकेन गगने नीलिमादिवत् ॥ २० ॥

देहेंद्रियेति ॥ देह अरु इंद्रियनके जो गुण और अंध बधिरादि धर्म, और गमनवचनादि कर्म, सो अमल कहे मायामलरहित अर्थात् अज्ञानके जो हैं कार्य देहइंद्रिय नामरूप संसार-मल तिसतें रहित सत् चित् आनंदस्वरूप आत्मा-विषे मूढ अविवेक करिके मिथ्या आरोप करते हैं, वास्तव आत्माविषे जन्ममरणादि कोई धर्म है नहीं. जैसे रूपरहित आकाशविषे मूढ अविवेक करिके नीलपीतादि रंगनका आरोप करते हैं२०

शंका—देह इंद्रियादिकके जन्मादिक धर्म आत्माविषे मति होउ. परंतु मैं कर्ता हूं, मैं भो-क्ता हूं, मैं पुण्यमान हूं, मैं पापी हूं, मैं सुखी हूं, मैं दुःखी हूं, यह निरंतर प्रतीत होता है. तातें

आत्मा कर्ता भोक्ता तौ है, और वैशेषिक जो हैं काणादके मतवाले तिननें आत्माकों कर्ता भोक्ता अंगीकार भी करा है ॥

उत्तर—कर्ता भोक्ता इत्यादि जो धर्म हैं सो अंतःकरणके हैं, सो अंतःकरण और आत्माकी एकरूपताके अध्यास अर्थात् भ्रमकरिके आत्माविषे आरोप हैं. तिसकों दृष्टांत करिके कहते हैं,

अज्ञानान्मानसोपाधेः कर्तृत्वादीनि चात्मनि ॥ कल्प्यंतेऽबुगते चन्द्रे चलनादिर्यथांभसः ॥ २१ ॥

अज्ञानादिति ॥ मनकी जो है उपाधि कर्तृत्व भोक्तृत्व आदिक धर्म तिनकरिके अज्ञानतें आत्माकी सच्चिदानंदरूपता ढकी हुई है, इस कारणतें आत्माका यथार्थ स्वरूप ना जानिके वैशेषिकादि मूर्खता करिके सच्चिदानंदस्वरूप आत्माविषे कल्पते हैं. जैसे चलनादिक जो जलके धर्म हैं, जो

जलविषे प्रतिबिंबभावकों प्राप्त चंद्रमाविषे भोग मूर्खतातें कल्पते हैं ॥ २१ ॥

अब राग इच्छादिक जो अंतःकरणके धर्म हैं, सो अज्ञानकरिके आत्माविषे कल्पते हैं. सो अन्वयव्यतिरेक युक्तिकरिके कहते हैं.

रागेच्छासुखदुःखादि बुद्धौ सत्यां प्रवर्तते ॥ सुषुप्तौ नास्ति तन्नाशे तस्माद्बुद्धेस्तु नात्मनः २२

रागेच्छा इति ॥ राग कहे विषयोंविषे विशेष अभिलाष, इच्छा कहे सामान्य अभिलाष, और सुखदुःखादि कर्तृत्व, भोक्तृत्व सर्व धर्म जाग्रत और स्वप्न अवस्थाविषे बुद्धी वर्तती है, यह अन्वय है, और सुषुप्ति अवस्थाविषे बुद्धी अपने कारणरूप अज्ञानविषे लय हो जाती है; तब रागादि धर्म कोई भी प्रतीत होते नहीं, यह व्यतिरेक

है. तिस कारणतें रागादि धर्म बुद्धीके हैं. आत्माके नहीं, ऐसा निश्चय करना इति ॥ २२ ॥

प्रश्न—जब रागादि आत्माके स्वभाव नहीं हैं, तौ आत्माका स्वभाव कैसा है, यह कृपा करिके कहौ.

उत्तर—आत्मका स्वभाव दृष्टांतकरिके कहते हैं.

प्रकाशोऽर्कस्य तोयस्य शैत्यमग्नेर्यथोष्णता ॥ स्वभावः सच्चिदानंदनित्यनिर्मलतात्मनः ॥ २३ ॥

प्रकाश इति ॥ अर्क कहे सूर्यका जैसे प्रकाश स्वभाव अर्थात् स्वरूप है, जलका शीतल स्वरूप है, और जैसे अग्निका उष्ण स्वभाव अर्थात् स्वरूप है; तैसे आत्माका सत् चित् आनंद नित्य निर्मल स्वभाव अर्थात् स्वरूप है इति ॥ २३ ॥

शंका—मैं जानता हूं, मैं सुखी हूं, ऐसे ज्ञा-

न और सुखकी आश्रयता आत्माकी प्रतीति होती है, तौ तुम निर्विकार सच्चिदानंदस्वरूप कैसे कहते हौ?

आत्मनः सच्चिदंशश्च बुद्धेर्वृत्ति-
रिति द्वयम् ॥ संयोज्य चाविवेके-
न जानामीति प्रवर्तते ॥ २४ ॥

उत्तर–आत्मन इति ॥ प्रत्यगात्माका जो है सत् चित् अंश अर्थात् बुद्धीकी वृत्तिविषे आत्माकी आभास कहे छाया, और अज्ञानस्वरूप आनंदका अंश जो है बुद्धिकी वृत्ति तिन दोनोंकों एकमें मिलाइके अविवेकतें मैं जानता हूं, मैं सुखी हूं, ऐसा जीव मानता है और वास्तव आत्मा असंग सर्व संबंधरहित है. जानना, सुनना, सुखदुःखादि असंग आत्माविषे किसी प्रकारतें बने हैं नहीं, और ज्ञान, सुखादि आकार वृत्तिरूप परिणाम बुद्धिका है. सो ज्ञान, सुखादि आश्रयता

बुद्धिविषे हैं, आत्माकी नहीं, और जो आत्माविषे प्रतीत होते हैं सो बुद्धि और आत्माकी एकरूपता करिके भासते हैं, वास्तव आत्मा निर्विकार सच्चिदानंदस्वरूप है इति ॥ २४ ॥

सो विशेषकरिके कहते हैं ॥

आत्मनो विक्रिया नास्ति बुद्धेर्बोधो न जात्विति ॥ जीवः सर्वमलं ज्ञात्वा कर्ता द्रष्टेति मुह्यति ॥२५॥

आत्मन इति ॥ आत्माविषे तौ किसी तरह कोई भी विकार है नहीं. काहेतें की, आत्मा निर्गुण है और निष्क्रिय कहे क्रियारहित है और शांत है, निरवद्य कहे वानीकरिके कहा नहीं जाता और निरंजन कहे मायाके लिपतें रहित है; ऐसे श्रुति भी आत्मस्वरूपकी निर्णय करती है. "निर्गुणं निष्क्रियं शांतं निरवद्यं निरंजनं" इति श्रुतेः॥ "अव्यक्तोयमचिंत्योयमविकार्योयमुच्यते" इति स्मृतेश्च ॥

बुद्धिविषे तौ बोधकी शंकाकी नास्ति है; काहेतें, की मायाका कार्य होनेतें जड है. तौ भी अंतःकरण अवच्छिन्न अर्थात् उपाधिवाले चेतनकी चेतनताकरिके संपूर्ण देह, इंद्रिय, अंतःकरणादि जड पदार्थ चेतनात्मक प्रतीत होते हैं, सो अन्तःकरण और आत्माके अभेदज्ञानकरि बुद्धीके कर्त्ता, भोक्तादिक धर्म अज्ञानतें आत्माविषे प्रतीत होते हैं, सो मिथ्याभ्रम है; आत्माविषे किंचित् भी विकार है नहीं ॥ २५ ॥

अब आत्माविषे अन्यथा आरोप, अज्ञानका फल और तत्त्वज्ञानका फल दिखाते हैं.

रज्जुसर्पवदात्मानं जीवं ज्ञात्वा भयं वहेत् ॥ नाहं जीवः परात्मेति ज्ञातं चेन्निर्भयो भवेत् ॥ २६ ॥

रज्जुसर्पवादिति ॥ जैसे महाअंधकारविषे विकाररहित रस्सी आदिविषे सर्प आदि-

के आरोपतें भयकंपादि दोष पुरुषकों प्राप्त होते हैं, इसी प्रकार सर्व विकाररहित आत्माकों सद्वि जीव कहे सद्वितीय परिच्छिन्नसंसारी अज्ञान करिके जानता है; ऐसी आत्माविषे मिथ्या निश्चयतें नानाप्रकारकी संसारी पीडानिमित्त भयकों प्राप्त होता है, ऐसा श्रुतिभी कहती है. द्वैतकरिके पुरुषकों नानाप्रकारके भय होते हैं; और अपने और आत्माविषे अंतर अर्थात् भेद मानता है; तिस पुरुषकों जन्ममरणका भय अवश्य होता है; और जो पुरुष आत्मस्वरूपकों नहीं जानता सो अवश्य नष्ट होता है; और स्मृतिभी कहती है, जो किंचित् भेद भी आत्मा और परमात्मामें मानता है सो पुरुष अवश्य नरकमें प्राप्त होता है. तथा च श्रुतिः॥"द्वितीयाद्वै भयं भवति। उदरमंतरं कुरुते अथ तस्य भयं भवति। न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिरिति श्रुतेः ॥ ईषदप्यंतरं कृत्वा रौरवं नरकं व्रजेदिति स्मृतेश्च" ॥और जब ऐसा जानता है की, मैं जीव नहीं, मैं तो अखण्ड

अद्वितीय सच्चिदानंदस्वरूप परमात्मा जगत्साक्षी असंग ब्रह्म हूं, इस प्रकार तत्त्वमस्यादि महावाक्य करिके जानता है सो पुरुष निर्भय हो जाता है. "ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवतीति श्रुतेः" ॥ २६ ॥

शंका–अति समीप जो आत्मा है, तौ मन बुद्धि आदिक आत्माकों काहे नहीं जानते वा देखते हैं.

उत्तर–मन आदि संपूर्ण दृश्य जड पदार्थ हैं, तिनकरिके आत्मा नहीं जाना जाता, यह कहते हैं.

आत्मावभासयत्येको बुद्ध्यादी-
नींद्रियाणि च ॥ दीपो घटादिव-
त्स्वात्मा जडैस्तैर्नावभास्यते ॥२७॥

आत्मेति ॥ आत्मा केवल एक है; सो संपूर्ण मन, बुद्धि, चित्त, अहंकारादिकनकों भासयति कहे प्रकाशता है, सो मन, बुद्धि आदि जड-

नकरिके नहीं भासता, अर्थात् नहीं प्रकाशता. जैसे एकही दीप घटादि सर्व पदार्थनकों प्रकाशता है. और घटादि मलिन पदार्थनकरिके दीप नहीं प्रकाशता ॥ २७ ॥

शंका–आत्मा बुद्धिकरिके जो नहीं जाना जाता अर्थात् नहीं प्रकाशता तौ आत्मस्वरूप जाननेके लिये कोई और दूसरा ज्ञान चाहिये.

उत्तर–आत्मा आपही बोधस्वरूप है इसलिये आत्माकों बोधांतरकी इच्छा है नहीं, तिसकों दृष्टांतकरिके कहते हैं.

स्वबोधे नान्यबोधेच्छा बोधरूपतयात्मनः ॥ न दीपस्यान्यदीपेच्छा यथा स्वात्मा प्रकाशते॥२८॥

स्वबोधे नेति ॥ आत्मा आपही बोधस्वरूप है, इस प्रकार नित्य बोधस्वरूप होनेतें दूसरे बोधकी इच्छा नहीं. काहेतें की, आत्मा अनुभव

अर्थात् चेतनस्वरूपही है. जैसे दीपककों अपने प्रकाश करनेकों दूसरे दीपककी इच्छा नहीं ॥२८॥

शंका—जब आत्मा आपही प्रकाशमान साक्षात्कार है तौ विना जतनही सर्व पुरुष मुक्त हैं. आत्मज्ञानका कुछ प्रयोजन है नहीं. काहेतें की, साक्षात्कारपर्यन्त संपूर्ण जतन हैं, साक्षात्कार भयेतें जीव सर्व बंधरहित ब्रह्मस्वरूप हो जाता है.

उत्तर—आत्माकी चैतन्यरूपता अरु अपरोक्षताका जो ज्ञान है, सो सामान्य ज्ञानका कथन है. मुक्तिका साधन नहीं, तौ मुक्तिका साधन कौन है, ऐसा पूछे तौ श्रवण कर. महावाक्यजन्य जो ब्रह्म और आत्माकी एकताका कथन है सो मुक्तिका साधन है. सो कहते हैं.

निषिध्य निखिलोपाधीन्नेति नेती-

ति वाक्यतः ॥ विंद्यादैक्यं महावा-
क्यैर्जीवात्मपरमात्मनोः ॥ २९ ॥

निषिध्येति ॥ नेति नेति इति वाक्य करिके निखिल कहे संपूर्ण उपाधियोंका निषेध कहे त्याग करै. और महावाक्यके प्रमाणकरिके जीव आत्मा अरु परत्माकों निश्चय करै. 'अर्थात् आदेशो नेतिनेतीत्येतन्निरसनं' इति-यह व्यासनारायणनें श्रुतिसूत्र कहा है, तिसका अर्थ यह है—नेति नेति कहे न इति, न इति, ऐसे दो वचन अनंगीकारविषे तात्पर्य है. यह नहीं, यह नहीं, ऐसे वेदकी आज्ञारूप उपदेशकरिके संपूर्ण जो समष्टि-व्यष्टिरूप उपाधि हैं, स्थूल, सूक्ष्म वा कार्य, कारण अथवा नामरूपकों निषेध अर्थात् अनात्म जड पदार्थनका त्याग करै और संबंध तीनिसहित 'तत्त्वमसि, अयमात्मा ब्रह्म, प्रज्ञानं ब्रह्म, अहं ब्रह्मास्मीति' इन वेदनकी महावाक्यनकरिके जीव,

आत्मा और परमात्माकी एकरूपताकों निश्चय करै, तिसी निश्चयका नाम मुक्ति है, सोई मुक्तिका साधन है, तिसका नाम तत्त्वज्ञान है. अब संबंध तीनी कहते हैं. सामानाधिकरण्यं १, विशेषणविशेष्यता २, लक्ष्यलक्षणभाव ३. तहां जिस वस्तुका जिस वस्तुके साथ सदा अभेद होवै सो मुख्य सामानाधिकरण्य है. जैसे सुवर्ण और भूषणगत सुवर्णका सदा अभेद होवै है, और जिस वस्तुका जिस वस्तुके साथ बाधकरिके अभेद होवै सो बाधसामानाधिकरण्य है. जैसे नाम रूप भूषणके बाधकरिके सुवर्णरूपताकों प्राप्त होता है, सो बाधसामानाधिकरण्य है, अथवा दो पदनकी प्रवृत्ति भिन्न भिन्न होवै, और दो पदनका अर्थ एकही होवै. जैसे घट और कुंभ शब्द भिन्न भिन्न हैं; परंतु लक्ष्य मृत्तिका दोनौंकी एक है, अथवा जैसे 'सोऽयं देवदत्त' इस वाक्यके तीनि पद हैं, सो। अयं। देवदत्त। तहा सो जो

है सो परोक्ष देशकालका वाचक है, और अयं अ-
परोक्ष देशकालका वाचक है, ऐसे दोऊ पदनका
प्रवृत्तिनिमित्त जुदा जुदा है, परंतु दोऊ पदन-
का तात्पर्य देवदत्तस्वरूपविषे है, अर्थात् देवदत्त-
विषे संबंध है. काहेतें की, दोऊ पदनका निमित्त
मात्र भिन्न भिन्न है, और प्रवृत्ति देवदत्तस्वरूप-
विषे है, यह सामानाधिकरण्य है. इसी प्रकार
तत्त्वमसि वाक्यविषे परोक्षादिसहित जो चेतन
तत्पदका वाच्य अर्थ; और अपरोक्षादिसहित जो
चेतन त्वं पदका वाच्य अर्थ; इन दोऊ पदनका
भी निमित्त जुदा जुदा है, और प्रवृत्ति दोऊ पद-
नकी एक शुद्ध चेतनविषेही है, अर्थात दोऊ पदनका
संबंध शुद्ध चेतनतें है, अथवा तात्पर्य चेतनविषेही
है. यह सामानाधिकरण्य प्रथम संबंध है, और वि-
शेषणविशेष्यता दूसरा संबंध है. जैसे 'सोयं दे-
वदत्त' सो और अयं ये दोऊ पद देवदत्तके विशेष-
ण हैं. और देवदत्तस्वरूप विशेष्य है, तिन दोऊ

परस्पर संबंध है; काहेतें की, सो और अयं ये दोऊ देवदत्तके स्वरूपके निश्चय करावनेवाले हैं. तैसे तत्त्वमसि वाक्यविषे भी तत्पदार्थ जो है परोक्षादि विशेषणसहित चैतन्य और त्वंपदार्थ जो है अपरोक्षादि विशेषणसहित चैतन्य सो परस्पर भेदव्यवहार तिनका विशेषणविशेष्यभावसंबंध है. और तीसरा लक्ष्यलक्षणभावसंबंध है. जैसे तिसविषे भी सो और अयं शब्द जो हैं चैतन्यके विशेषण सो ये दोऊ पद लक्षण हैं. और देवदत्त मात्र लक्ष्य है. यह लक्ष्यलक्षणभावसंबंध है. इसीतरह तत्त्वमसि वाक्यमें तत् त्वंपदनका वाच्यअर्थविषे सद्वितीय अद्वितीय परोक्ष अपरोक्ष व्यापक परिच्छिन्न आदिका जो परस्पर विरोधधर्मवाले हैं, तिनको त्याग करिके विरुद्धधर्मरहित अखंड सच्चिदानंद चैतन्यके साथ लक्ष्यलक्षणभावसंबंध है इति. सो ये तीनि संबंधद्वारा लक्षणाकरिके जीवब्रह्मकी एकतासिद्धि होती है; तातें लक्षणाका स्वरूप

कहते हैं. सो लक्षणा जहती, अजहती, जहताज-
हती भेदतें तीनि प्रकारकी है, तहां प्रथम जहतील-
क्षणा कहते हैं. जैसे गंगामें घर है, तौ गंगापदका
जो है वाच्य अर्थ प्रवाह तीसविषे घरका असंभव है,
इसलिये गंगापदकी तिरविषे लक्षणा है. और वाच्य
अर्थका संपूर्ण त्याग है. सो महावाक्यविषे जहती-
लक्षणा बनै नहीं; काहेतें की, महावाक्यमें संपूर्ण
वाच्य अर्थका त्याग नहीं, और अजहतीलक्षणा,
जैसे अरुणो धावति सो बनै नहीं;काहेतें की अरुणो
नाम लाल रंगका है, तिसविषे धावना बनै नहीं.तातें
लाल घोडा दौरता है, सो अजहतीमें वाच्य अर्थका
त्याग नहीं, अधिकका ग्रहण है, सो भी महावाक्य-
विषे बनै नहीं; काहेतें, महावाक्यमें वाच्य अर्थका
संपूर्ण ग्रहण नहीं. तीसरी जहताजहती अर्थात् भा
गत्यागलक्षणा है, कहे एक भागका त्याग, एकका
ग्रहण सो महावाक्यविषे माना है. जैसे सोयं देव
दत्त. जैसे सो और अयं सो सो देशकालविशेषण

अंशकों त्यागिके अखंड देवदत्तस्वरूपमात्रमें भाग-
त्यागलक्षणा है, तैसे तत्त्वमसि इत्यादि महावाक्य-
नविषे समष्टि, व्यष्टि, स्थूल, सूक्ष्मरूप वाच्यअर्थवि-
रोध अंशकों त्यागिके व्यापक अखंड चैतन्यमात्र
लक्ष्यकों ग्रहण भागत्यागलक्षणा जाननी इति॥२९

शंका—स्थूलादि उपाधिनकों न त्याग करै
तौ हानि तौ कुछ है नहीं; काहेतें चैतन्य
असंग है.

उत्तर—उपाधिनके त्यागविना अखंड सच्चि-
दानंद स्वरूपका जानना अति कठिन है, जैसे
अज्ञानकरिके आरोपित सर्पके निषेधविना रज्जु-
का यथार्थ स्वरूप नहीं जानते, तैसे स्थूल शरीर
आदिके निषेधविना सच्चिदानंद परमात्माकी नि-
श्चय नहीं होती ॥

आविद्यकं शरीरादि दृश्यं बुद्बु-
दवत् क्षरम् ॥ एतद्विलक्षणं वि-
द्यादहं ब्रह्मेति निर्मलम् ॥ ३० ॥

आविद्यकमिति ॥ देह, इंद्रीय आदिक जो हैं संपूर्ण दृश्य पदार्थ सो अविद्याकल्पित बुद्बुदवत् क्षर कहे नाशमान हैं. तातें सर्वका निषेध अर्थात् त्याग करै, तिनतें भिन्न सच्चिदानंदस्वरूप निर्मल कहे अविद्यामलरहित ब्रह्म मैं हूं, ऐसा निश्चय करै, तौ पुरुष कृतकृत्य होइ इति ॥ ३० ॥

अब महावाक्यजनित ज्ञानकी पूर्वोक्त ब्रह्म और आत्माकी एकता ज्ञानकी दृढताके लिये तत्त्वज्ञानका मनन करनेका प्रकार कहते हैं ॥

देहान्यत्वान्न मे जन्मजराका-
र्श्यलयादयः ॥ शब्दादिविषयैः
संगो निरिंद्रियतया न च ॥ ३१ ॥

देहान्यत्वादिति ॥ देह कहे स्थूल शरीरके जो हैं जन्म, जरा, कृशता, मृत्यु; आदि पदतें क्षुधातृषादि धर्म, सो मेरेविषे हैं नहीं. काहेतें, मैं नित्य जन्म जरा मरण परिणामतें रहित सत्

असंगो ह्ययं पुरुष इति श्रुतेः

चित् आनंदस्वरूप देहतें भिन्न हूं, और शब्द स्पर्शादिक जो पंचविषय हैं, सो भी मेरेविषे नहीं. काहेतें, मैं असंग कूटस्थ साक्षी आत्मा निरिंद्रिय कहे संपूर्ण इंद्रियोंतें रहित हूं, पंचभूतनके कार्य जो हैं, इंद्रिय और विषय तिनका परस्पर संयोग वियोग होउ अरु मैं तौ नित्य हूं, इसलिये किसीका कार्य नहीं, इस कारणतें मेरे असंगस्वरूपका वास्तव किसीका संबंध है नहीं इति ॥ ३१ ॥

अब मनके धर्मनकों भी आत्माविषे निषेध करते हैं ॥

अमनस्त्वान्न मे दुःखरागद्वेषभयादयः ॥ अप्राणो ह्यमनाः शुभ्र इत्यादिश्रुतिशासनात् ॥ ३२ ॥

अमनस्त्वादिति॥ दुःख राग कहे विषयोंविषे प्रीति औ द्वेष कहे वैर, संकल्प, विकल्प, मोह, शोक, भय इत्यादि संपूर्ण मनके धर्म हैं, मेरे नहीं.

काहेतें की, मैं अमन कहे मनतें रहित अर्थात् भिन्न मनका साक्षी हूं. और क्षुधा, तृषा आदिक जो प्राणोंके धर्म हैं सो भी मेरेविषे नहीं, काहेतें, अप्राण कहे मैं प्राणोंतें रहित अर्थात् भिन्न साक्षी हूं. तिसतें क्षुधा, तृषा, काणत्व, बधिरत्व आदि धर्म मेरेविषे नहीं. जिसतें मैं मनतें भिन्न हूं, इस कारणतें, रागद्वेषादि भी धर्म मेरेविषे नहीं, और मैं शुभ्र हूं, इसतें मलिनरूप स्थूल देहतें भी भिन्न हूं. काहेतें की, जन्ममरणादि धर्मनका आत्माविषे निषेध है, और अपने कार्यवर्गतें परे अर्थात् भिन्न और अक्षर अर्थात् अव्यक्त कहे मूलमायातें भिन्न इसतें मूढता आदि अज्ञान धर्म भी मेरेविषे नहीं, इस कारणतें मैं निर्विकार शुद्ध चैतन्य ब्रह्म हूं इति ॥ ३२ ॥

जो जन्य पदार्थ हैं, सो अनित्य हैं; इस कारणतें प्राण आदिकनकी अनात्मताकों साधन करते हैं. प्राणादीनां जन्यत्वेन घटादिवद् नित्य

तामाह एतस्माज्जायत इति

यः यः अन्यः सः सः
स्थानित्वः यथावत्

एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च ॥ खं वायुर्ज्योतिरापश्च पृथ्वी विश्वस्य धारिणी ॥ ३३ ॥

एतस्मादिति ॥ प्रत्यगभिन्न कहे प्रतिशरीरनमें अंतःकरणका साक्षी वा प्रेरक अथवा असत् जड दुःखरूप संसारतें विपरीत स्वभाववाला सत् चित् आनंदरूप ब्रह्मतें प्राण जो हैं क्रियाशक्ति, अंतःकरण जो है मन ज्ञानशक्ति, अरु संपूर्ण दश इंद्रिय और देहादिक खं जो है आकाश, वायु, ज्योति जो है अग्नि, आप कहे जल और पृथ्वी जो है संपूर्ण स्थावरजंगमरूप प्राणियोंको धारण करनेवाली, इतना प्रपंच अनादि अविद्याकरिके उत्पन्न होता भया है इति ॥ ३३ ॥

निर्गुणो निष्क्रियो नित्यो निर्विकल्पो निरंजनः ॥ निर्विकारो निराकारो नित्यमुक्तोऽस्मि निर्मलः ॥ ३४ ॥

अतो नित्यमुक्तः निरंजने मय्यात्मस्वरूपे उदमाकाशादिप्र
रूपं जगत्स्वरूपे न्यासभगवान्नाथकारः निर्मल इति

निर्गुण इति ॥ प्रकृति जो है माया, तिसका जो कार्य है बुद्धि, तिसतें भिन्न और सतोगुणादि और राग इच्छादिरहित मैं निर्विकार साक्षी ब्रह्म हूं, और निष्क्रियः कहे देह इंद्रियआदि क्रियारहित हूं. अर्थात् देह इंद्रियादितें जुदा हूं. और मैं नित्य हूं, सर्व कालमें चैतन्यरूप हूं, और निर्विकल्पः कहे संकल्पविकल्पधर्मवाले मनतें भिन्न हूं. और निरंजन कहे मायाका जो है कार्य जगतरूपी मल तिसतें रहित हूं. और निर्विकार कहे विकार जो है मायाका कार्य, जगत् मिथ्या कल्पित तिसका मैं अधिष्ठान हूं, आकाशवत् स्वतंत्र निरवयव हूं, और नित्यमुक्त कहे मोहादिक जो हैं बंधन अज्ञानकल्पित, सो वास्तव मेरे असंग स्वरूपविषे है नहीं, और मैं निर्मल हूं कहे अज्ञानअविद्यारूप मलतें रहित हूं इति ॥ ३४ ॥

शंका—गुरुकी शिष्यप्रति यथार्थ तेरा स्व-

रूप इसी प्रकार है; परंतु परिच्छिन्न तौ है. काहेतें की, देहवान् प्रतीत होता है.

उत्तर—असंग आत्माका किसी पदार्थका संग नहीं.

अहमाकाशवत्सर्वबहिरंतर्गतोऽच्युतः ॥ सदा सर्वसमः शुद्धो निःसंगो निर्मलोऽचलः॥ ॥ ३५ ॥

अहमिति ॥ संपूर्ण जो हैं जन्य पदार्थ जड जगत् नाम रूप दृश्य तिसके भीतर में आकाशवत् व्यापक और सबतें भिन्न किसीमें लिप्त नहीं. तात्पर्य यह—मैं प्रत्यक्चैतन्यरूप अस्ति, भाति, प्रियरूप करिके सबके बाहर भीतर एकरस व्यापक हूं.

शंका—तौ सर्वके विनाश होनेतें तेरा भी विनाश होवैगा.

उत्तर—अच्युत इति, संपूर्ण कल्पित जगतके

विनाश होनेतें मेरा विनाश है नहीं. काहेतें, मैं अधिष्ठानस्वरूप हूं.

शंका—अधिष्ठानरूपताकरिके तूं विनाशरहित तौ है, परंतु अंतःकरणादिविषे तूं अपनी सत्ता और चैतन्यता दो प्रकारकी सत्ता देनेवाला और घटादि पदार्थनविषे केवल सत्तामात्रही हैं, तातें तेरी विषमसत्ता तौ है.

उत्तर—सदा सर्वसम इति ॥ मैं सदा सर्व पदार्थनविषे सम हूं. परंतु अंतःकरणादि जो हैं, सो सतोगुणका कार्य होनेतें स्वच्छ है, इसकारणतें तिनविषे आत्माकी सत्ता चैतन्यता दो प्रकारकी प्रतीत होती है. और घटादि तमोगुणका कार्य होनेतें मलिन हैं. तिनविषे केवलसत्तामात्र ही प्रतीत होती है. चैतन्यता नहीं और सर्व पदार्थनविषे आत्मा सम है, इस कारणतें आत्माविषे समविषमभाव नहीं है, अरु शुद्ध कहे

पुण्यपापसंबंधरहित हूं और असंग कहे वास्तव सर्व संबंधरहित हूं. और निर्मल कहे संशयादिमलरहित हूं और अचल कहे सच्चिदानंदस्वरूप चलाचल धर्मनतें रहित हूं इति ॥ ३५ ॥

अब प्रत्यगात्मा जो है त्वंपदार्थ जीवात्मा, तिसका जिस प्रकारका लक्ष्यस्वरूप बरनन करा है, तिसी प्रकारका तत्पदार्थब्रह्मका लक्ष्यस्वरूप भी बरनन करा है, तिन दोनुओंका अभेद अनुसंधान अर्थात् चिंतन करते हैं.

नित्यशुद्धविमुक्तैकमखंडानंदमद्वयम् ॥ सत्यं ज्ञानमनंतं यत् परं ब्रह्माहमेव तत् ॥ ३६ ॥

नित्येति ॥ नित्य कहे भूत, भविष्य, वर्तमान कालविषे बाधारहित शुद्ध अविद्या आदि मलरहित विमुक्त संसाररहित एक सजातीय भेदशून्य, अखंड, देशकालवस्तुपरिच्छेदशून्य, आनंद-

सुखस्वरूप,अद्वय, विजातीय, स्वगतभेदरहित इस प्रकारका जो है परब्रह्मका स्वरूप "सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्मेति" श्रुतिप्रतिपादित जो है सच्चिदानंदस्वरूप सो ब्रह्म मैं हूं ॥ ३६ ॥

इस प्रकार जो पुरुष बहुत कालपर्यंत अभ्यास करता है, तिसकरिके जिस समयमें दृढ भया ब्रह्म और आत्माका ज्ञान, तिसी समयमें अविद्याजो है अज्ञान और तिसका कार्य जन्ममरणरूप संसार, तिसकी नाश कर देता है. यह कहते हैं.

एवं निरंतराभ्यस्ता ब्रह्मैवास्मीति वासना ॥ हरत्यविद्याविक्षेपान् रोगानिव रसायनम् ॥ ३७ ॥

एवमिति ॥ इस प्रकार पूर्वोक्त कही हुई रीतिसें निरंतर बहुत काल जो पुरुष आदरपूर्वक मनन करता है, तिसतें उत्पत्ति होती है दृढ वासनाकी मैं ब्रह्म हूं, सो देह और आत्माके ज्ञानव-

त् ब्रह्म और आत्माकी एकताके ज्ञानकी संशय-विपर्ययतें रहित जो दृढता, सो अविद्याकृत जो चित्तके विक्षेप कहे आत्मा और ब्रह्मका वियोग तिसकों भलीप्रकारतें नाश करि देती हैं; जैसे रसायन जो है औषध सो बहुत काल सेवनतें रोगोंका नाश करि देता है ॥ ३७ ॥

अब ब्रह्म और आत्माकी एकताकी भावनाके लिये साधन कहते हैं ॥

विविक्तदेश आसीनो विरागो विजितेंद्रियः॥ भावयेदेकमात्मानं तमनंतमनन्यधीः॥ ३८ ॥

विविक्तदेश इति॥ विविक्त कहे जनसंबधरहित एकांतदेशविषे सुखपूर्वक आसन करै, और विराग कहे शब्दस्पर्शादि विषयोंविषे इच्छारहित, विशेषकरिके जीता है इंद्रियोंकों जिस पुरुषनें, सो अनन्यधी कहे आत्मा, अर्थात् अपने आपही

है. ब्रह्म दूसरा कोई है नहीं. ऐसी है तत्परबुद्धि जिसकी, ऐसा जो पुरुष है, सो अनंत कहे देशकालवस्तुपरिच्छेद अर्थात् अंत वा नाशरहित वेद और शास्त्रकरिके प्रसिद्ध आत्माका भावना करै, की एक अद्वैत चैतन्यस्वरूप वासुदेव जो संपूर्ण भूतोंविषे वास करता है, सोई चैतन्यस्वरूप वासुदेव मैं हूं, ऐसी चिंतना करै, निरंतर जिसकरिके ब्रह्म और आत्माके एकताका निश्चय होता है इति ॥ ३८ ॥

शंका—दृश्यप्रपंच व्यवहारविषे प्रत्यक्ष वर्तमान एकताकी भावना कैसी होती है ॥

उत्तर—तहां कहते हैं ॥

आत्मन्येवाखिलं दृश्यं प्रविलाप्य धिया सुधीः ॥ भावयेदेकमात्मानं निर्मलाकाशवत्सदा ॥ ३९ ॥

आत्मनीति ॥ सुधी जो है शुद्ध अंतःकरण

वा बुद्धिवाला अधिकारी, सो विवेकवती बुद्धि-
विषे संपूर्ण दृश्यप्रपंचकों लय करै. तात्पर्य यह–
वाचारंभण कहे कहनमात्रही आत्मामें विकार है,
तिसकों दूरि करै. अर्थात् पृथ्वीकों जलमें लय करै.
जलकों अग्निमें लय करै. अग्निकों वायुमें लय करै.
वायुकों आकाशमें, आकाशकों अव्याकृत अर्थात्
मूलप्रकृति वा मायामैं, तिसकों शुद्धब्रह्ममें लय
करै. पीछे सो शुद्ध ब्रह्म व्यापक विष्णु मैं हूं ऐसा
चिंतन करै. तहां दृष्टांत–निर्मलाकाशवदिति. जैसे
शरत्कालविषे धूरि, मेघ आदि उपाधितें रहित
स्वच्छ आकाश होता है. तैसे आत्माकों स्वच्छ
एकरस संभावना करै इति ॥ ३९ ॥

शंका–संपूर्ण दृश्यप्रपंचकों त्यागिके विवे-
की समाधिविषे किस रूपतें स्थित होता है, त-
हां कहते हैं ॥

नामवर्णादिकं सर्वं विहाय पर-

मार्थवित् ॥ परिपूर्णचिदानन्दस्वरूपेणावतिष्ठते ॥ ४० ॥

नामेति ॥ परमार्थतत्त्व आत्माकों जानिके विवेकी नाम रूप आदि दृश्यप्रपंच, जाति, मूर्ति- आदि संपूर्णकों त्यागिके, परमार्थरूप, अधिष्ठान, कूटस्थ, अंतर्यामी, सच्चिदानंदस्वरूप, साक्षी, शुद्ध, चैतन्यस्वरूप जो है आत्मतत्त्वरूप होकर, अपने आप स्थित होता है. तात्पर्य यह—चित्तका चित्तभावरहित शुद्ध ब्रह्माकार निर्वातदीपकी अखंड ज्योतिवत् स्थित होता है ब्रह्मवेत्ता ॥ "यथा दीपो निवातस्थो नेंगते सोपमा स्मृता ॥ योगिनो यतचित्तस्य युंजतो योगमात्मनः" इति भगवद्वचनात् ॥ ४० ॥

शंका—पृथिव्यादि दृश्यप्रपंचके लय होनेतें भी समाधिविषे ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेयभेदरूप त्रिपुटी प्रपंचलक्षण पवनरूपके विद्यमान होनेसति

कैसे आप निर्वात दीपककी अखंडज्योतिवत् स्थित होता है. तहां कहते हैं.

ज्ञातृज्ञानज्ञेयभेदः परात्मनि न
विद्यते ॥ चिदानंदैकरूपत्वाद्दी-
प्यते स्वयमेव हि ॥ ४१ ॥

ज्ञातृज्ञानेति ॥ सविकल्पसमाधिविषे ज्ञातादि त्रिपुटी भेद तौ प्रतीत होता भी है, परंतु समाधिके समयविषे भेद कोई नहीं रहता, तिसकी तिस समयमें परानंद एकरूपता हो जाती है, तिस कारणतें दीप्यते कहे प्रकाशता है इति॥४१॥

इस प्रकार ब्रह्म और आत्माकी एकता ज्ञानके अर्थ आत्माका ध्यानादि प्रयत्न करनेवाले॰ का प्रत्यक्ष फल कहते हैं ॥

एवमात्मारणौ ध्यानमथने स-
ततं कृते ॥ उदितावगतिर्ज्वा-
ला सर्वाज्ञानेंधनं दहेत् ॥ ४२ ॥

एवमिति ॥ पूर्वोक्त कहीहुई रीतिसें आत्मा जो है अंतःकरण, अर्थात् मन सो नीचेकी अरनी कहे लकरी करै, और प्रणव जो है ॐकार सो ऊपरकी लकरी करै, तिन दोनोंकी एकताकों ध्यान कहते हैं. पतंजलि उक्त ध्यानरूप मथन अर्थात् घसना तिसका सर्वदा बहुत काल निरंतर श्रद्धापूर्वक करनेतें उदित भई जो अखंडाकार अहं ब्रह्मवृत्ति कहे ज्ञानस्वरूप ज्वाला कहे अग्निकी लपट सो संपूर्ण अज्ञान और अज्ञानका कार्य जन्ममरणरूप संसार सोई भया इंधन तिसकों भलीप्रकारतें भस्म करि देती है. तथा च श्रुतिः "आत्मानमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम्। ज्ञाननिर्मथनाभ्यासाद्दहेत्कर्म स पंडितः" इति ४२

उदित भई ज्वाला सर्व अज्ञानरूप इंधनकों भस्म करती है सो दृष्टांतकरिके कहते हैं. निरावरण आत्माकी प्रकाशमानताका भी दृष्टांत कहते हैं ॥

अरुणेनेव बोधेन पूर्वसंतमसे हृते ॥ तत आविर्भवेदात्मा स्वयमेवांशुमानिव ॥ ४३ ॥

अरुणनेवेति ॥ जैसे अरुणके उदय अर्थात् प्रकाश होनेतें प्रथम तम जो है अंधकार, सो दूरि हो जाता है. अरुण नाम है सूर्यके रथवानकों, तिसी तरह मैं ब्रह्म हूं ऐसे ज्ञानकरिके संपूर्ण अज्ञानरूप तम दूरि होनेतें पश्चात् अंशुमान् कहे सूर्यवत् आत्मा आपही प्रगट होता है, अर्थात् निरावरणवत् प्राप्त होता है, "ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः ॥ तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् "इति ॥ ४३ ॥

शंका—जो साक्षात् अपरोक्षतातें ब्रह्म होता है, ऐसे श्रुतिप्रमाणकरिके आत्मा नित्य प्राप्त है. काहेतें की, अपने आप कभी अप्राप्त और परोक्ष होता नहीं. सदाहीं अपरोक्ष और साक्षात्कारही

होता है, और तुम कहते हौ, की अज्ञान नाश होनेतें प्राप्त होवेगा, सो अयुक्त है.

उत्तर—नित्य प्राप्त जो है आत्मा, सो अविद्याकरिके अप्राप्तवत् प्रतीत होता है, तिस अविद्याके नाश होनेतें प्राप्तवत् प्रतीत होता है, यह कहते हैं.

आत्मा तु सततं प्राप्तोऽप्यप्राप्य-
वदविद्यया ॥ तन्नाशे प्राप्तवद्भा-
ति स्वकंठाभरणं यथा ॥ ४४ ॥

आत्मा त्विति ॥ तत्त्वज्ञानदृष्टिकरिके आत्मा सतत कहे निरंतर यथार्थस्वरूपतें प्राप्त है, परंतु अज्ञानियोंकों अनादि अज्ञानकरिके अप्राप्तवत् प्रतीत होता है. सो श्रीगुरुकी कृपातें तत्त्वमस्यादि महावाक्यजनित ज्ञानकरिके अविद्याके नाश होनेतें प्राप्तवत् प्रतीत होता है. जैसे किसी पुरुषका अपने कंठविषे प्राप्त अपनी माला तिस

कों अज्ञानकरिके अप्राप्तवत् प्रतीत होती थी, तिसके नाश होनेतें प्राप्तवत् प्रतीत भई, तैसे आत्मा भी है इति ॥ ४४ ॥

शंका–जिसकी साक्षात्कार अपरोक्षतातें ब्रह्म होता है ऐसे श्रुतिप्रतिपादित ब्रह्म, सो नित्यप्राप्त भी श्रुति कहती है. जीवात्माकों नहीं कहती.

उत्तर–अज्ञान करिके भ्रमतें परमात्माही जीवपनाकों प्राप्त भया है, वास्तव कोई जीव है नहीं, सो दृष्टांततें कहते हैं.

स्थाणौ पुरुषवद्भ्रांत्या कृता ब्रह्म-
णि जीवता ॥ जीवस्य तात्त्वि-
के रूपे तस्मिन्दृष्टे निवर्तते ॥ ४५॥

स्थाणाविति ॥ जैसे अंधकारकरिके आवृत स्थाणुकों भ्रांतिकरिके यह पुरुष है ऐसे मिथ्या प्रतीति होती भई, तैसे अनादि अविद्याकृत

भ्रातितें ब्रह्मविषे कर्तृत्व भोक्तृत्व आदि जीवलक्षण अर्थात् जीवपना आरोप करा, सो जीवका तात्त्विक अर्थात् वास्तव स्वरूप साक्षात् अपरोक्ष ब्रह्म तिसकों तत्त्वमस्यादि वाक्यनकरिके साक्षात् करै तौ जीवपना निवृत्त होइ. जैसे स्थाणुके निश्चय होनेतें कल्पित पुरुषकी भ्रम दूरि हो जाती है; तैसे जीवका वास्तव स्वरूप जाननेतें जीवपना नाश हो जाता है ॥ ४५ ॥

शंका—विवेकिनकों भी मेरी तेरी इत्यादि व्यवहार दृढ प्रतीत होता है, तौ कैसे तुम संसारकी निवृत्ति कहते हो?

उत्तर—मेरी तेरी इत्यादि व्यवहार अज्ञानका कार्य है भी, परंतु तत्त्वज्ञानकरिके नाश हो जाते हैं, सो दृष्टांत कहते हैं.

तत्त्वस्वरूपानुभवादुत्पन्नं ज्ञानं-

मंजसा ॥ अहं ममेति चाज्ञानं बाधते दिग्भ्रमादिवत् ॥ ४६ ॥

तत्त्वेति ॥ जीवका जो वास्तव तत्त्वस्वरूप सच्चिदानंदात्मक लक्ष्य है तिसके अनुभव होनेतें उत्पन्न भया जो तत्त्वमस्यादि महावाक्यनतें ब्रह्म आत्माकी एकताका दृढ ज्ञान, सो तुरतही अहं मम अर्थात् मेरी तेरी यह जो है अज्ञानका कार्य तिसकी नाश करि देती है. जैसे अज्ञानकरिके दिशनका भ्रम और स्थाणुआदिविषे पुरुषादिका भ्रम सूर्यके दर्शन होनेतें आपही नाश हो जाते हैं इति ॥ ४६ ॥

अब निवृत्त अज्ञान कार्य विवेकियोंकी दृष्टि बरनन करते हैं.

सम्यग्विज्ञानवान् योगी स्वात्मन्येवाखिलं स्थितम् ॥ एकं च सर्वमात्मानमीक्षते ज्ञानचक्षुषा ॥ ४७ ॥

सम्यगिति ॥ संशयविपर्ययरहित साक्षात्कार अपरोक्ष दृढ ज्ञानीकों योगी कहते हैं, सो योगी तिस साक्षात् अपरोक्षताकरिके ज्ञानरूपी नेत्र परिपूर्ण अधिष्ठान कूटस्थ साक्षी स्वरूपविषे अर्थात् अपनेविषे संपूर्ण नामरूप दृश्यप्रपंचकों अज्ञानकल्पित देखता है. काहेतें की, कल्पितकों अधिष्ठानकी सत्तातें रहित अर्थात् भिन्न सत्ताका अभाव है. तातें संपूर्ण दृश्य एक अद्वितीय अधिष्ठानभूत एक आत्माहीकों देखता है. आत्मातें भिन्न कल्पित कहने मात्रहीं शशशृंग, नरविषाण, आकाशके पुष्पवत् हैं; तिस कारणतें ज्ञानरूपी नेत्रोंकरिके ज्ञानी इस प्रकारतें देखता है ४७

शंका—जो प्रत्यक्ष आत्मातें भिन्न प्रतीत होता है जगत, तिसकों आत्मातें भिन्न कैसे देखता है ज्ञानी?

उत्तर—उपादेय अर्थात् कार्य उपादानतें

भिन्न बाध सामानाधिकरण्यकरिके अभेद देखता है, सो दृष्टांत कहते हैं.

आत्मैवेदं जगत्सर्वमात्मनोऽन्यन्न विद्यते ॥ मृदो यद्वद्घटादीनि स्वात्मानं सर्वमीक्षते ॥ ४८ ॥

आत्मैवेति ॥ यह संपूर्ण जगत् आत्माही है. काहेतें, आत्मातेंही उत्पत्ति भया है. जैसे बीजतें उत्पन्न भया जो वृक्ष है सो बीजका विस्तार है, बीजतें भिन्न वृक्षकी सत्ता है नहीं. अथवा उपादान मृत्तिकातें भिन्न उपादेय घटकी सत्ता नहीं. तैसे उपादान आत्मातें भिन्न कल्पित जगतकी सत्ता कछु है नहीं. जैसे मृत्तिकाके कार्य घट शरावादि मृत्तिकाही है, तैसे आत्माका कार्य संपूर्ण दृश्यप्रपंच आत्माही है. इस कारणतें सर्व दृश्यप्रपंचकों ज्ञानी अपना आत्मस्वरूपही देखता है. भिन्न नहीं इति ॥ ४८ ॥

इस प्रकार ज्ञानीकी वास्तव दृष्टि कही. अब तिसकी जीवन्मुक्ति अवस्था दर्शाते हैं.

जीवन्मुक्तिस्तु तद्विद्वान्पूर्वोपाधिगुणांस्त्यजेत् ॥ सच्चिदानंदरूपत्वाद्भवेद्भ्रमरकीटवत् ॥ ४९ ॥

जीवन्मुक्तिरिति ॥ आत्मतत्त्व साक्षात्कार विवेकी जीवन्मुक्त पूर्व कहे तत्त्वज्ञान होनेके प्रथम अनादि अविद्याकल्पित जो देह इंद्रियादि और मन, बुद्धि, चित्त, अहंकारादि उपाधि जो हैं, सो त्रिगुणी मायाके धर्म जानिके विवेकद्वारा त्याग न करता है, सो पुरुष सच्चिदानंदस्वरूप है, भ्रमरी कीटवत् साक्षात् ब्रह्म होता है. यहां यह आशय है–जैसे भृंगी एक कीट होता है. सो भ्रमर कीट विशेषकी भय करिके तिसके आकार अपनी चित्तकी वृत्तिकों करता है, सों प्रथम शरीरके धर्मनकों त्यागिकै तिसका रूप होजाता है; तैसे ब्रह्मवेत्ता उपाधिरहित ब्रह्म हो जाता है ॥ ४९ ॥

अब जीवन्मुक्तकों श्रीरामचंद्ररूपताका अलंकारकरिके बरनन करते हैं.

तीर्त्वा मोहार्णवं हत्वा रागद्वेषादिराक्षसान् ॥ योगी शांतिसमायुक्तो ह्यात्मारामो विराजते ॥ ५० ॥

तीर्त्वेति ॥ आत्माविषे आराम कहे स्थिति है जिसकी, ऐसा योगी मोहार्णव कहे अज्ञानरूप समुद्रकों ब्रह्मात्मकी एकताके ज्ञानरूप पूलपर चढिके सो पार जाइ, रागद्वेषादि लक्षण रावण इत्यादि राक्षसोंकों, जिनने शांतिरूपी सीताकों हरा अर्थात् चुराया था, सो शुद्धांतःकरणरूपी धनुषतें वैराग्यविचारादि बानोंकरिके हत्वा अर्थात् नाश करिके शांतिरूप लक्षण सीताकों लेकर तिससंयुक्त सो पुरुष प्रारब्धशेष स्थिति शरीरलक्षण अयोध्याविषे स्वरूपलक्षणकरिके अपने राजविषे निवृत्तिरूप सिंहासनपर

बैठिके विशेषकरिके राजते कहे प्रकाशमान होता भया. जैसे श्रीरामचंद्रजी समुद्रकों बांधिके पार जाइ रावणादि राक्षसोंकों मारिके सीतासमेत अयोध्यापुरीमें सिंहासनपर बैठि विराजमान होते भये इति ॥ ५० ॥

अब लक्षण विधानतें जीवन्मुक्तकी अवस्था अर्थात् स्थितिकों कहतेहैं ॥

बाह्यानित्यसुखासक्तिं हित्वात्मसुखनिर्वृतः ॥ घटस्थदीपवत्स्वच्छः स्वांतरेव प्रकाशते ॥ ५१ ॥

बाह्येति ॥ नेत्र आदि जो बाहरकी इंद्रिय हैं, तिनकी विषयोंके संबंधतें उत्पन्न भया जो विषयानंद अनित्यरूप सुख तिसविषे आसक्ति अर्थात् प्रीतिकों त्यागिके आत्मा स्वरूपके सुखकरिके निवृत्त कहे आनंदित और स्वस्थ कहे अपने स्वरूपभूत महिमाविषे स्थिति, सो पुरुष अंतः कहे

अपने अंतःकरणविषे साक्षात्कार ब्रह्मरूप प्रकाशता है. चक्षु आदि वृत्तिद्वारा बाह्य विषयोंविषे विस्तारके ज्ञानलक्षण तेजकरिके तिनके निरोधतें अंतःकरणविषे प्रकाशमान है और चेतनतारूप बाहिर भी प्रकाशता है. जैसे घटविषे वर्तमान जो दीपक सो बाह्य निवृत्ति किरणोंकरिके घटके अंतर विशेषकरिके प्रकाशता है, और उसनता आदिक बाहिर भी प्रतीत होता है ॥ "प्रजहाति यदा कामान् सर्वान्पार्थ मनोगतान् ॥ आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते" इति भगवद्वचनात् ॥ ५१ ॥

उपाधिस्थोऽपि तद्धर्मैर्न लिप्तो
व्योमवन्मुनिः ॥ सर्वविन्मूढव-
त्तिष्ठेदसक्तो वायुवच्चरेत् ॥ ५२ ॥

उपाधिस्थ इति ॥ देहादि उपाधियोंका साक्षरूपकरिके स्थित भी मुनी कहे वेदांतमनन

करनेविषे तत्पर तत्त्ववेत्ता व्योम कहे आकाशवत् जैसे आकाश भी धूरि इत्यादि उपाधियोंविषे लिप्त नहीं होता, तैसे उपाधियोंके धर्मनविषे तत्त्ववेत्ता लिप्त नहीं होता, और सर्व पृथिवीविषे फिरता है. और सर्वज्ञ भी है. गूंगे पुरुषकी तरह स्थित होता है, और प्रारब्धभोगकरिके प्राप्त विषयोंविषे आसक्त नहीं होता, वायुवत् आचरता है, जैसे वायु सुगंधिवाले पदार्थोंविषे आसक्ति अर्थात् प्रीतिरहित अपने स्वरूपहीमें चलती है. तैसे ज्ञानी भी अपने स्वरूपमें विचरता है इति ॥ ५२ ॥

अब ज्ञानीकी विदेहकैवल्यमुक्ति कहते हैं॥

उपाधिविलयाद्विष्णौ निर्विशेषं
विशेन्मुनिः ॥ जलेजलंवियद्व्योम्नि
तेजस्तेजसि वा यथा ॥५३॥

उपाधीति ॥ ज्ञानीकी प्रारब्धभोगोंके

समाप्ति होनेतें देह इंद्रिय आदि उपाधि लय होती हैं, तिनके लय होनेतें मुनि जो है विवेकी सो व्यापक विष्णुपरब्रह्मविषे निर्विशेषं कहे सर्वविशेषरहित यथार्थरूपकरिके प्रवेश होता है. अत्यंत प्रवेशविषे दृष्टांत कहते हैं. जैसे जलमें जल अर्थात् नदी जो है समुद्रमें प्राप्त होकर नामरूपरहित अभेदरूप समुद्रही हो जाती हैं, तैसे विवेकी नामरूपरहित परे, ते परे जो परम पुरुष परब्रह्म है, तिसमें मिलिके अभेद हो जाता है. और जैसे घटाकाशकी उपाधीके नाश होनेतें घटाकाश महाकाशरूप हो जाता है. और तेज जो है दीपका दिवा अग्नि, सो तेजकेसाथ अभेद हो जाते हैं; तैसे ब्रह्मवेत्ता पुरुष देहादि उपाधियोंके नाश होनेतें ब्रह्मकेसाथ अभेद हो जाता है॥५३

अब विदेहमुक्ति अवस्थाविषे विवेकी जिस परब्रह्मकों प्राप्त होता है, तिसका निरूपण अष्टश्लोकनतें करते हैं॥

यल्लाभान्नापरो लाभो यत्सुखान्नापरं सुखम् ॥ यज्ज्ञानान्नापरं ज्ञानं तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥ ५४ ॥

यल्लाभादिति ॥ जिस ब्रह्मके लाभ अर्थात् प्राप्त होनेतें जगतविषे दूसरा लाभ नास्ति है- काहेतें, जिसकी परम पुरुषार्थतारूपकरिके संपूर्ण लाभ तिसके अंतर्भूत हैं, और जिस ब्रह्मके स्वरूपसुखतें परे कोई सुख है नहीं; काहेतें, तिसकों निरतिशय कहे सर्वतें अधिक सुख होनेतें क्षुद्र सुख तिसके अंतर्भूत हैं, और जिस ब्रह्मके साक्षात्कार ज्ञानके परें और ज्ञानकी नास्ति है. काहेतें, ब्रह्मवेत्ताही ब्रह्म होता है, ऐसे श्रुतिप्रतिपादित ज्ञानका परम पुरुषार्थका हेतु होनेतें अतिश्रेष्ठ है, इस प्रकारका ब्रह्मस्वरूप जिस रूपकरिके विदेहकैवल्य अवस्थाविषे विवेकी स्थित होता है, तिस ब्रह्मस्वरूपकी निश्चय करै इत्यर्थः ॥ ५४ ॥

यद्दृष्ट्वा न परं दृश्यं यद्भूत्वा न पुनर्भवः ॥ यज्ज्ञात्वा न परं ज्ञानं तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥ ५५ ॥

यद्दृष्ट्वेति ॥ जिस ब्रह्मकों देखि अर्थात् साक्षात्कारके परे और देखना नास्ति है. काहेतें अधिष्ठानरूपके साक्षात्कार होनेतें संपूर्ण कल्पित, जगत् साक्षात्कार हो जाता है, और जिस ब्रह्मके रूप होनेतें अर्थात् एकता प्राप्त होनेतें फेरि संसारमें जन्म नहीं होता. "यद्गत्वा न निवर्तते तद्धाम परमं मम" इति भगवदुक्तेः ॥ और जिस ब्रह्मके सामान्यकरिके सर्वके उपादानरूपके जाननेतें और कछु जाननेकों नास्ति है. काहेतेंकी, कार्यकी कारणतें भिन्न सत्ता है नहीं. सो कारणके जाननेतें संपूर्ण कार्य जाना गया. जैसे मृत्तिकाके एक पिंडकों जानेतें तिसके संपूर्ण घटादि कार्य जाने गये 'तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत्' तिस ब्रह्मकी निश्चय करै इति ॥ ५५ ॥

शंका—विदेहकैवल्य अवस्थाविषे तत्त्ववेत्ता जिसब्रह्मकों प्राप्त अर्थात् स्वरूप होता है सो ब्रह्म परिच्छिन्न है, की अपरिच्छिन्न कहे व्यापक है? जो कहौ परिच्छिन्न है तौ नाशमान होनेतें परम पुरुषार्थ न सिद्ध भया और जौ कहौ व्यापक है, तौ प्राप्ति बनती नहीं.

उत्तर—जिसकी परिपूर्ण नित्य आनंदरूपताकरिके पुरुषार्थता है. यह कहते हैं ॥

तिर्यगूर्ध्वमधः पूर्णं सच्चिदानंदमद्वयम् ॥ अनंतं नित्यमेकं यत्तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥ ५६ ॥

तिर्यगिति ॥ जो सच्चिदानंद अद्वैत् कहे द्वैतप्रपंचरहित वस्तु तिर्यक् कहे पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण और नीचे ऊपर, सर्वत्र पूर्ण है. और अनंतं कहे देश, काल, वस्तु परिच्छेदसें रहित है. और नित्य कहे सत्य है. एक कहे सजातीय विजा-

तीय स्वगत भेदतें रहित है, तिस ब्रह्मकी मुमुक्षु निश्चय करै इति ॥ ५६ ॥

अतद्व्यावृत्तिरूपेण वेदांतैर्ल-
क्ष्यतेऽव्ययम् ॥ अखंडानंदमे-
कंयत्तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥ ५७॥

अतदिति ॥ अतत् कहे जगत् तिसकी व्यावृत्ति कहे निवृत्तिरूप अर्थात् परमार्थरूपकरिके जिसकों वेदांत लक्ष्य कहे वास्तवस्वरूप लक्षणाकरिके निश्चय करावते हैं. सो ब्रह्म अद्वैत है कहे अविद्याकल्पित जगतका जिसविषे भाव नहीं, और अखंड कहे सुखस्वरूप केवल निर्विकार जो ब्रह्म है तिसकी निश्चय करै विवेकी इति ॥ ५७॥

शंका—ब्रह्मा इंद्रादि श्रेष्ठ देवतनकों भी निरतिशय आनंदवाले शास्त्रनमें सुनते हैं. तुम कैसे केवल ब्रह्महीकों निरतिशय रूप कहते हो?

उत्तर—तिन ब्रह्मा इंद्रादिककों भी जो छु-

द्रानंद है सो ब्रह्मानंदका लेश अर्थात् अंशकों लेकर संपूर्ण आनंद होते हैं. और ब्रह्मानंदतें परे जगतविषे दूसरा कोई आनंद है नहीं, यह कहते हैं.

अखंडानंदरूपस्य तस्यानंदलवाश्रिताः ॥ ब्रह्माद्यास्तारतम्येन भवंत्यानंदिनोऽखिलाः ॥५८॥

अखंडेति ॥ जिस ब्रह्मका अपरिच्छिन्न आनंदस्वरूप है, तिसके आनंदसमुद्रस्वरूप परमात्माके आनंदका लव कहे सुखके लेशके आश्रय होकर ब्रह्मा इंद्र आदिक तारतम्य कहे कमती बढती अपनी अपनी पुण्यके अनुसार आनंदवाले होते हैं, सो सर्व ब्रह्मानंदके अंतर्भूत हैं, तातें जिस ब्रह्मानंदके लेश कहे कणिकामात्रतें ब्रह्मा इंद्रादिकों पुण्यके अनुसार क्षुद्रानंदका सुख प्राप्त होता है, तिसी ब्रह्मविषे विवेकी विदेहकैवल्य अवस्थाविषे स्थित होता है, यह भाव है इति ॥ ५८ ॥

शंका–यह आनंदस्वरूप ब्रह्म कहांपर रहता है. जिसके आनंदके लेश करिके ब्रह्मा आदि आनंदताकों प्राप्त होते हैं ॥

उत्तर–ब्रह्मका देश काल है नहीं. काहेतें, की ब्रह्म सर्वगत है, सो दृष्टांततें कहते हैं ॥

तद्युक्तमखिलं वस्तु व्यवहारस्त-
दन्वितः ॥ तस्मात्सर्वगतं ब्र-
ह्म क्षीरे सर्पिरिवाखिले ॥ ५९ ॥

तद्युक्तमिति॥ तिस सच्चिदानंद ब्रह्मके रूपकरिके युक्त संपूर्ण घटपटादि पदार्थ अस्ति भाति प्रियरूपकरिके प्रकाशमान होते हैं. व्यवहार कहे वचन, दान, गमन, विसर्ग, आनंद क्रिया सच्चिदानंदरूप ब्रह्मकरिके युक्त व्यवहार सिद्ध होता है. “सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्” इति भगवद्वचनात्, तातें सर्व पदार्थनविषे गत और तिसकरिके युक्त संपूर्ण व्यवहार होते

हैं; जैसे सर्पि जो घृत है, जो सर्वत्र दुग्धविषे अभेदरूपकरिके व्याप्त है, और तिसकरिके दुग्धविषे मधुरतादिक गुण भी हैं. तैसे सर्व वस्तुनविषे ब्रह्म अभेदरूप होकर व्याप्त है इति ॥ ५९ ॥

इस प्रकार प्रपंचविषे परमात्माकी अनुगतता भी है; परंतु तिस प्रपंचके धर्मनविषे ब्रह्मका स्पर्श नहीं. काहेतें की वह असंग है, यह कहते हैं ॥

अनणवस्थूलमह्रस्वमदीर्घमजमव्ययम् ॥ अरूपगुणवर्णाख्यं तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥ ६० ॥

अनण्विति ॥ शंका—सर्वगत जो आत्मा है सो अणुप्रमाण है, और श्रुति भी कहती है. एक अणु आत्मा जाननेके योग्य है.

उत्तर—आत्मा अणुमात्र नहीं, और जो श्रुति कहती है आत्मा अणुमात्र है, सो श्रुतीका तात्पर्य यह है, की आत्माका स्वरूप ज्ञाननेकों

दुर्विज्ञेय अर्थात् अतिकठिन है. और श्रुतीका तात्पर्य यह नहीं, की आत्मा अणु है इति ॥

शंका—आत्मा अणुप्रमाण नहीं है, तौ न होउ पर महान् तौ है, और श्रुति भी कहती है, आत्मा महानतें भी महान है ॥

उत्तर—आत्मा स्थूल नहीं इस कारणतें आत्मा महान् नहीं. जो महाप्रमाणवाले स्थूल घटपटादि पदार्थ हैं, सो जड होनेतें अनित्य हैं, और श्रुतीका तात्पर्य यह है, की सर्वके अधिष्ठानतारूप होनेतें सर्वतें आत्माकी श्रेष्ठता है, महान् पदका परिमाणसाधक अर्थ नहीं, और अ-ह्रस्व कहे आत्मा ह्रस्व परिमाणतें रहित है. अ-दीर्घ कहे दीर्घ परिमाणरहित है, ऐसे श्रुतिप्रतिपादित जो अज कहे जन्मतें रहित, अव्यय कहे नाशरहित, अरूप कहे सत्त्वादि परिणामरहित, और ब्राह्मणादि वर्णरहित ब्रह्म है. तिसका मुमुक्षुनें निश्चय करना इति ॥ ६० ॥

यद्भासा भासतेऽर्कादिर्भास्यैर्यत्तु न भास्यते ॥ येन सर्वमिदं भाति तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥ ६१ ॥

यद्भासेति ॥ जिस ब्रह्मके भासा कहे अलौकिक तेजकरिके सूर्यादि भासते कहे प्रकाशमान् होते हैं, और सूर्यादिकी भास्य कहे प्रकाशतें जो नहीं प्रकाशता, और जिस ब्रह्मविषे सूर्य, चंद्रमा, विजुली आदिकका प्रकाश है नहीं, तौ अग्निकी कौन गिनती है ? और जिस ब्रह्मके प्रकाशकरिके सूर्यादिक प्रकाशते हैं, और संपूर्ण जगत् प्रकाशमान होता है तिस ब्रह्मका निश्चय करना इति ॥ ६१ ॥

इस प्रकार विदेहकैवल्यकेविषे जिस रूपकरिके विवेकी अस्थित होताहै, तिस ब्रह्मका निरूपण किया. अब परमपुरुषार्थकी हेतुता फेरिभी तत्त्ववेत्ताकी निश्चयकों दिखाते हैं ॥

श्लोकत्रयेण परमात्मनो व्यापकतामाह

स्वयमंतर्बहिर्व्याप्य भासयन्नखि-
लं जगत् ॥ ब्रह्म प्रकाशते वन्हि-
प्रतप्तायसपिंडवत् ॥ ६२ ॥

स्वयमिति ॥ तीनि श्लोकनकरिके पर कहे परमात्मा संपूर्ण जगतके बाहर भीतर व्यापक भासयत् कहे प्रकाशता है. जैसे तप्त लोहके पिंडविषे व्याप्त बाहर भीतर अग्नि प्रकाशता है, तैसे चराचर नामरूप दृश्य जगतके बाहर भीतर प्राप्त परमात्माही अस्ति, भाति, प्रियरूपकरिके अर्थात् सत्ता, चेतनता और आनंदरूपताकरिके प्रकाशता है. यह भाव है इति ॥ ६२ ॥

जगद्विलक्षणं ब्रह्म ब्रह्मणोऽन्यन्न
किंचन ॥ ब्रह्मान्यद्भाति चेन्मि-
थ्या यथा मरुमरीचिका ॥ ६३ ॥

जगदिति ॥ असत् जड दुःखरूप अविद्याकल्पित जो जगत् है, तिसतें विपरीत सत् चित्

आनंदस्वरूप ब्रह्म भिन्न है, तिस कारणतें ब्रह्मतें अन्यत् कहे भिन्न किंचित् भी कछु है नहीं, और ब्रह्मतें भिन्न जो कछु पदार्थ प्रतीत होते हैं, सो मृगतृष्णाके जलवत् योंही मिथ्या प्रतीत होते हैं. वास्तव कछु है नहीं इति ॥ ६३ ॥

सो प्रत्यक्ष फिरि भी कहते हैं ॥

दृश्यते श्रूयते यद्यद्ब्रह्मणोऽन्यन्न तद्भवेत् ॥ तत्त्वज्ञानाच्च तद्ब्रह्म सच्चिदानंदमद्वयम् ॥ ६४ ॥

दृश्यत इति ॥ जो नेत्रोंकरिके देखते हैं, और जो कर्णोंकरिके सुनते हैं, और मनकरिके स्मरण अर्थात् मनन करते हैं, और बानीकरिके जो कहते हैं, सो संपूर्ण सच्चिदानंद अद्वैत ब्रह्मही है, ब्रह्मतें भिन्न और कछु है नहीं, ऐसे तत्त्वज्ञान-करिके तत्त्ववेत्ता पुरुष जानते हैं. यह भाव है इति ॥ ६४ ॥

शंका—सच्चिदानंद ब्रह्मरूप तुम सर्व जगत-कों कहते हौ, तौ सर्वत्र देखि काहे नहीं परता.

उत्तर—सच्चिदानंद ब्रह्म सर्वगत भी है, परंतु तत्त्वज्ञानदृष्टिवाले पुरुष देखते हैं, अज्ञानदृष्टिकरिके देखनेकों ब्रह्म दुर्दर्श्य अर्थात देखनेकों दुर्लभ है. यह कहते हैं ॥

सर्वगं सच्चिदात्मानं ज्ञानचक्षुर्निरीक्षते ॥ अज्ञानचक्षुर्नेक्षेत भास्वंतं भानुमंधवत् ॥ ६५ ॥

सर्वगमिति ॥ सत् चित् आनंद आत्मा सर्वगत भी है, पर तिसकों ज्ञानरूपी नेत्रवाले पुरुष देखते हैं. श्रुति भी कहती है, की नेत्रोंकरिके आत्माका ग्रहण नहीं होता, और वानीकरिके कहा नहीं जाता. मनकरिके मनन नहीं होता, और नामरूप देवतनके निमित्त तपकरिके अथवा कर्म शुभाशुभकरिके प्राप्त नहीं होता. के-

वल ज्ञानके प्रसादकरिके विशुद्धसत्वद्वारा विवेकरू-
प नेत्रोंतें निष्कल परमात्मस्वरूपकों विवेकी पुरु-
ष देखते हैं. और अनादि अविद्याकरिके आवृत हु-
ई नेत्रोंकी दृष्टि जिनकी, ऐसे जो हैं अज्ञानी, सो
साक्षात्कार प्रकाशमान साक्षी अपने आत्मस्व-
रूपकों नहीं देखते. जैसे प्रत्यक्ष प्रकाशमान सूर्य-
कों नेत्रहीन पुरुष नहीं देखता है तैसे विवेकरूप
नेत्रोंतें रहित पुरुष आत्मस्वरूपकों नहीं देखि
शकता इति ॥ ६५ ॥

शंका—ज्ञानरूपी नेत्रवाले पुरुषनें विवेक-
के बलकरिके देहइंद्रियादिक विषयोंविषे अध्यास-
लक्षण मलकों दूरि भी करता है. पर पूर्वजन्म-
के अध्यासतें संसाररूपी वासनाके वशीभूत हो-
कर फेरि भी अहं मनुष्य, ऐसा देहीका अभिमा-
नरूप बंधन प्रतीत होता है, तो कैसे स्वरूप-
स्थितीकों शुद्ध सत्वद्वारा तुम मुक्ति कहते हो,
तातें तुह्मारा कहना अयुक्त है. तहां कहते हैं ॥

श्रवणादिभिरुद्दीप्तो ज्ञानाग्निप-
रितापितः ॥ जीवः सर्वमलान्मु-
क्तः स्वर्णवद्द्योतते स्वयम् ॥ ६६ ॥

श्रवणादिभिरिति ॥ श्रवण, मनन, निदिध्यासनकरिके उत्पन्न भई अति उत्कृष्ट प्रकाशमान जो अग्नि, तिसकरिके परितप्त हुवा अर्थात् दग्ध हुवा जीवका संपूर्ण मल कहे संसारभूत अज्ञान, तिसका कार्य जो है जगत्, तिसतें मुक्त कहे रहित पुरुष सुवर्णकी तरह आपही शुद्ध प्रकाशमान होता है. तात्पर्य यह स्वस्वरूप सच्चिदानंदलक्षण आत्मस्वरूप प्रकाशता है. तिस पुरुषका अहं मनुष्य ऐसा अभिमान फिरि किसी तरहतें नहीं होता इति ॥ ६६ ॥

शंका–इस प्रकार शुद्ध करा हुवा आत्मा कैसा होता है, और कहां उदय अर्थात् प्रगट होता है. और किसकों प्रकाशता है सो कहते हैं ॥

हृदाकाशोदितो ह्यात्मा बोधभा-
नुस्तमोऽपहृत् ॥ सर्वव्यापी सर्व-
धारी भाति सर्वं प्रकाशते ॥६७॥

हृदाकाशोति ॥ इस प्रकार शुद्ध कराहुवा जीव आत्मा और परमात्माकी एकतारूप लक्षणकरिके लक्षित हुवा, सो बोधरूप सूर्य अर्थात् ज्ञानस्वरूप सूर्य, हृदयरूप आकाशमें प्रगट वा प्राप्त होता है, सो सर्वको भाति कहे प्रकाशता है, और आत्मा आप स्वयंप्रकाश है ॥

शंका–हृदयरूप आकाशविषे प्रगट होता है, सो हृदयाकाशपरिच्छिन्न अर्थात् नाशमान है, तौ तिसके साथ आत्मा भी परिच्छिन्न मानना चाहिये, तहां कहते हैं ॥ सर्वव्यापीति ॥ आत्मा सर्व प्रपंचविषे व्यापक है, और सर्वधारी कहे अज्ञानकार्य जगतका अधिष्ठान है, तात्पर्य यह की कार्यकरिके कारणकी हानि नहीं होती इति ॥६७॥

अब सर्व पुरुषोंकों अपने आत्मस्वरूपतत्त्वकों तीर्थरूप करिके बरनन करते हैं. तिसके सेवनतें जो फल होता है, सो सर्व तीर्थके फलका शिरोमणि है. तात्पर्य यह—सर्व कर्म और सर्व तीर्थ और सर्व देवतनका सेवनरूप जो फल हैं, तिन सर्व फलोंका शिरोमणि अद्वैत आत्माही फल है. तिसकी सेवा अवश्य करनी चाहिये. काहेतें की, सेवनीय अवश्य आत्माही है तिसके सेवनतें कोईभी सेवा विशेष नहीं रहती, सो कहते हैं ॥

शंका—स्वाभाविक पापनके दूर करनेके अर्थ तत्त्ववेत्ता भी प्रयागादि तीर्थनकी यात्राका उद्यम करते हैं, तुम कैसे सर्व मलतें रहित स्वर्णवत् प्रकाशमान आत्माकों कहते हो?

उत्तर—अपनी आत्मस्वरूप तीर्थविषे स्नान करनेवाले पुरुषकों कछु भी कर्तव्य है नहीं, यह कहते हैं ॥

दिग्देशकालाद्यनपेक्ष्य सर्वगं शीतादिहृन्नित्यसुखं निरंजनम् ॥ यः स्वात्मतीर्थं भजते विनिष्क्रियःस सर्ववित्सर्वगतोऽमृतो भवेत् ॥ ६८ ॥

दिग्देशेति ॥ जो सर्व क्रियातें रहित परमहंस अपने आत्मस्वरूप तीर्थविषे स्नान करनेवाले अर्थात् भजनेवाले हैं. तात्पर्य यह—जो एकाग्रचित्त होकर आत्मतत्त्वकों विचार वा सेवन मनन करते हैं, सोई सर्ववेत्ता और सर्वज्ञ कहे सर्वके जाननेवाले सर्वगत कहे व्यापक परमात्मस्वरूप, सो अमृत कहे मुक्त हैं. कैसा है आत्मारूप तीर्थ, दिग् कहे पूर्वादि दिशा और वैकुंठ, कैलास, मृत्युलोकादि देश और भूत भविष्य वर्तमानकाल आदिकी इच्छातें रहित है. काहेतें, सर्वगत कहे व्यापक है. इस कारणतें देश कालादिकी इच्छा आत्मतीर्थविषे नहीं. और प्रयागादि तीर्थ संपूर्ण

देशकालवाले हैं. और परिच्छिन्न भी हैं. तातें इनतें आत्मतीर्थ भिन्न है, फेरि कैसा है आत्मतीर्थ, शीतादिहृत् कहे शीत उष्णादि द्वंद्व दुःखों के हरनेवाला है, जिसतें आत्मा नित्यसुख सर्वदा सुखस्वरूपही है, और प्रयागादि तीर्थ, शीत उष्णादि द्वंद्व दुःखोंके देनेवाले हैं, और महामारी परती है, तौ मूलतेंही विनाश करते हैं. फेरि कैसा है आत्मा, निरंजन कहे मायाका जो है कार्य जगतरूप मलतें रहित है, और प्रयागादि तर्थ कीचकादौ सहित हैं. तातें मुमुक्षु पुरुषकों स्वात्मतीर्थ अवश्य सेवना है, दूसरा कर्तव्य और कोई है नहीं. तदुक्तं महाभारते "आत्मा नदी संयमतोयपूर्णा सत्यावर्ता शीलतटा दयोर्मिः ॥ तत्राभिषेकं कुरु पांडुपुत्र न वारिणा शुद्ध्यति चांतरात्मा" इति ॥ भागवतेऽपि "साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थभूता हि साधवः ॥ तीर्थीकुर्वंति तीर्थानि स्वांतःस्थेन गदाभृता ॥ १ ॥ नह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिला-

मयाः। तेपुनंत्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः"इति॥ अत्र साधवः स्वात्मतीर्थे कृतस्नाना इत्यर्थः "स्नातं तेन समस्ततीर्थसलिले दत्ता च सर्वावनिर्यज्ञानां च कृतं सहस्रमखिला देवाश्च संपूजिताः ॥ संसाराच्च समुद्धृताः स्वपितरस्त्रैलोक्यपूज्योऽप्यसौ यस्य ब्रह्मविचारणे क्षणमपि स्थैर्यं मनः प्राप्नुयात्॥ कुलंपवित्रं जननी कृतार्था वसुंधरा पुण्यवती च तेन॥ अपारसच्चित्सुखसागरेऽस्मिन् लीनं परे ब्रह्मणि यस्य चेतः ॥ मम भवेद्गुरुणां पदकंजयोरिह परत्र गतिः पदयोर्नतिः॥ वसति यत्र विमुक्तिरहर्निशं तदुपमां कथयामि कथं गिरः ॥ ६८ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमच्छंकराचार्यकृत आत्मबोधः समाप्तः ॥

इति श्रीमन्माधवानंदपरमहंसपरिव्राजविरचिता (आत्मबोधाख्यप्रकरणस्य) सुबोधिनी भाषाटीका समाप्ता ॥ शुभं भवतु ॥